बुद्ध-वचन

(धम्मपद)

अनुवादक

सियारामशरण गुप्त

प्रकाशक

साहित्य सदन,

चिरगाँव (झाँसी)

२०१३ वि०
प्रथमावृत्ति

मूल्य
२॥)

श्री श्रीनिवास गुप्त द्वारा,
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित।

बुद्ध को, धर्म को और संघ को

सादर नमस्कार करके

तथागत की २५वीं परिनिर्वाण शताब्दी के

पवित्र अवसर पर

पालि भाषा के 'धम्मपद' का यह समश्लोकी अनुवाद

हिन्दी में प्रस्तुत करते हुए

आज के त्रिरत्न

विनोबा, राजेन्द्रप्रसाद और जवाहरलाल का

सादर स्मरण करता हूँ

जिनके द्वारा

अहिंसा की आलोक शिखा इस बुद्धभूमि से

दूर दूर तक

प्रसारित हो रही है

सियारामशरण गुप्त

वैशाख पूर्णिमा २०१३

चिरगाँव

श्रीराम

अनुवादक का वक्तव्य

इसी वैशाख पूर्णिमा को भगवान् बुद्ध की २५ वीं जन्म-शताब्दी मनाई जा रही है। तथागत हमारी इस भूमि पर अवतरित हुए, हमारे बीच इन्हीं पथ-प्रान्तरों में विचरे और हमारी ही लोक भाषा में उन्होंने हमें उद्बोधित किया, यह आनन्द हमारे लिए मानो फिर से नया हो उठा है। जान पड़ता है, परिनिर्वृत बुद्ध के अमृत-सागर से शीतल वायु का कोई झोंका दूर से आकर हमें स्पर्श कर गया हो! इस अवसर पर भगवान् बुद्ध के प्रति श्रद्धाञ्जलि स्वरूप पालि भाषा के "धम्मपद" का यह समश्लोकी हिन्दी अनुवाद 'बुद्ध-वचन' हिन्दी भाषियों की सेवा में उपस्थित करते हुए अनुवादक को अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

"धम्मपद" विभिन्न अवसरों पर विभिन्न जनों के प्रति सबोधित भगवान् बुद्ध की उपदेश गाथाओं का संग्रह है। जिस श्रद्धा और

विश्वास के साथ हम लोग श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ करते हैं, "धम्मपद" को भी बौद्धजनता का वही समादर प्राप्त है। श्रीमद्-भगवद्गीता महाभारत से लिया गया अंश विशेष है। धम्मपद भी पालि भाषा के त्रिपिटक का एक खण्ड है। इस प्रकार ये दोनों ग्रन्थ लोगों के तत्व संग्राहक पौरुष को प्रकट करते हैं। हिन्दू के ही अथवा बौद्ध के ही लिए ये नहीं हैं। इनके वक्ता और श्रोता दोनों ही सार्वजनीन हैं। अर्जुन के सामने जो समस्या थी वह व्यक्ति विशेष की नहीं, वरन् भिन्न-भिन्न रूपों में सबकी थी। नर रूप में अर्जुन के ग्रहण किये जाने का हेतु यही है और इसी कारण श्रीमद् भगवद्गीता हिन्दुओं के ही निमित्त न होकर सब की है। धम्मपद में भगवान् बुद्ध ने जिन विभिन्न जनों को उद्बोधित किया, उन सबकी समस्याएँ भी हम सबकी हैं और इसीसे शतियों से इस ग्रन्थ ने भी देश विदेश में दूर दूर तक असंख्य पुरुषों को प्रभावित किया है। भगवान् बुद्ध को बौद्ध कहकर कैसे किसी सम्प्रदाय की सीमा में अवरुद्ध रक्खा जा सकता है। वे सबके—समस्त विश्व के—हैं। उनके वचनों के इस समश्लोकी हिन्दी अनुवाद को, आशा है, हिन्दी भाषा भाषी इसी भाव से ग्रहण करेंगे। अनुवादक बौद्ध नहीं है—बौद्ध उस अर्थ में, जिसमें यह प्रचलित है। परन्तु उसने पूरे आदर और सम्मान के साथ यह कार्य किया है। आशा है, पाठक इसे इसी भाव से स्वीकार करेंगे।

अनुवाद करते समय अनुवादक ने बहुधा यह अनुभव किया है कि पचीस सौ बरस पहले बुद्ध ने अपने विचार जिन शब्दों में प्रकट किये थे, तद्भव अथवा तत्सम रूपों में वे आज भी हमारी अभिव्यक्ति के साधन बने हुए हैं। जहाँ अन्य भाषियों को इन्हें समझने के लिए दुभाषिये आवश्यक होते हैं, वहाँ अनेक स्थल अपने आप समझकर हम उनके साथ निजत्व स्थापित कर सकते हैं। ऐसी अनुभूति का भी मूल्य है। शब्दों के द्वारा ही सही, भगवान् का सस्पर्श कुछ तो मिले। छन्द भी मूल के ही लिये गये हैं। आज जब हिन्दी में छन्द सम्बन्धी औदार्य की कमी नहीं है, तब प्राचीन होने के कारण ही अनुष्टुप् आदि के प्रति सकोच उचित नहीं जान पड़ता। हमारे बड़े से बड़े कवियों के द्वारा व्यवहृत इन छन्दों में भारतवर्ष के हृदय का स्पन्दन ध्वनित है। इस प्रकार अनुवाद में "धम्मपद" के अन्तर्बाह्य दोनों को सुरक्षित रखने की चेष्टा की गई है। ऐसे ग्रन्थों के अनुवाद में मूल के निकट रहना ही श्रेयस्कर होता है। तथापि पूरी सावधानी बरतने पर भी अनेक त्रुटियों की सम्भावना है। उनकी ओर ध्यान दिलाये जाने पर कृतज्ञ भाव से अगले सस्करण में परिहार का प्रयत्न किया जायगा।

यह अनुवाद सात-आठ बरस पहले पूरा हो चुका था, पर उस समय प्रकाशित नहीं हो सका। इस बीच में यह फिर से दुहरा लिया गया है। श्री चारुचन्द्र वसु के बँगला और सस्कृत के अनुवादों से

इस कार्य में बडी सहायता मिली है। इसके लिए अनुवाद उनका अत्यन्त आभारी है।

यह ग्रन्थ काव्य की प्रचलित रूप-रेखा के भीतर नहीं आता। प्रत्येक छन्द में अपनी रुचि का रस भीना कवित्व चाहने वाले की प्यास, हो सकता है, यहाँ न बुझे। जल पीने के लिए समुद्र के किनारे जा पहुँचने जैसा उनका वह प्रयास सफल होने वाला है भी नहीं। धम्मपद में संग्रहीत गाथाओं का रस भिन्न प्रकार का है। शतियों के कितने ही उलट-फेरों में न तो वह कभी सूखा और न कभी वह बासी ही पडा। अपनी दैनिक समस्याओं का समाधान इनमें हमें सरल और बोधगम्य भाषा में मिलता है। गाँव, नदी, वन, बाढ, फूल पत्ती, सीमान्त रक्षा, कूडे के ढेर, पशु-पक्षी और सूर्य और चन्द्रमा के साथ संग्रथित करके तथागत ने इन्हें हमारे समग्र जीवन के साथ गूँथ दिया है।

कहा गया है कि तथागत के परिनिर्वाण के अनन्तर भिक्षुओं ने इन बुद्ध वचनों का संचयन इस उद्देश्य से किया कि भगवान् की अनुपस्थिति में हमें इनसे निरन्तर प्रेरणा मिलती रहे। इसा सवत् की पाँचवीं शती में बुद्धघोषाचार्य ने धम्मपद की अट्ठकथा नाम की टीका लिखी थी। उन्होंने प्रत्येक गाथा के सम्बन्ध में निर्देश किया है कि भगवान् ने किस स्थान पर किसके प्रति वह वचन कहा। ये स्थान हमारे वर्तमान हिन्दी भाषी क्षेत्र में ही आते हैं और इसी

क्षेत्र की तत्कालीन लोक भाषा इन वचनों में सुरक्षित है। ऐतिहासिक कारणों से यद्यपि बौद्ध धर्म भारतवर्ष में लुप्तप्राय है, फिर भी हमारे लिए ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उन दिनों जब संचार के साधन संसार में अत्यन्त सीमित थे, वैसे में भी ये दूर-दूर तक पहुँचे और चीन, बर्मा, स्याम और लंका आदि देशों में अपने मूल रूप में रक्षित रहकर आज तक समादृत हैं। इनके सम्बन्ध में अपने भाव का निदर्शन इन्हीं में से एक गाथा में हम इस प्रकार पाते हैं

चिरप्पवासिं पुरिसं दूरतो सोत्थिमागतं।
ञातिमित्ता सुहज्जा च अभिनन्दन्ति आगतं॥

[लौटा चिर प्रवासी हो स्वस्ति सयुत दूर से,
ज्ञातिमित्र सुहृद् लेते अभिनन्दन से उसे।]

गाथा—१६-२१९

इन बुद्ध वचनों के सम्बन्ध में यही स्थिति वास्तव में हमारी है। अगली गाथा में हमारे इस भाव को और ऊँचे उठने का अवसर मिला है

तथेव कतपुञ्ञम्पि अस्मालोका परं गतं।
पुञ्ञानि पटिगण्हन्ति पियं ञाती व आगतं॥

[तथैव सुकृती जाता यहाँ से परलोक में,
प्रिय पुण्य वहाँ लेते लौटे स्वजन-ज्यों उसे।]

गाथा—१६-२२०

और इस प्रकार ये गाथाएँ हमारे निचले स्तर से हमें अन्य लोक में ऊपर उठा ले जाती हैं। यही नहीं, हमारे इस लोक के समस्त "ज्ञाति मित्र सुहृद्" उस लोक के अधिवासी सुकृतों से, पुण्यों से, तुलकर नये अभिनन्दन के गौरव से कृतार्थता का अनुभव करते हैं। इस देश में बौद्ध धर्म के न रहने पर भी इसीसे इन वचनों की सुरभि अब भी इस भूमि में बसी हुई है और हमारे सन्त और कवि इस भाव धारा में अविच्छिन्न रूप से हमारा वातावरण मुखरित किये रह सके हैं।

किसी कल्याणकारी धर्म का विरोध इन वचनों में नहीं है। मनुस्मृति, महाभारत और गीता में भी इनके तुल्यरूप वचन यत्र-तत्र मिलते हैं। ब्राह्मण वर्ग की गाथाओं में तथागत ने ब्राह्मण के लिए जो आदर्श उपस्थित किया है, वह गीता के स्थितप्रज्ञ जैसा ही है। तमहं ब्रूमि ब्राम्हणं—मैं उसे ब्राह्मण कहता हूँ—कहकर किसी प्रकार का ब्राह्मण विरोध व्यक्त नहीं किया गया है। वाक्य में बल देकर यहाँ जो स्वर ऊँचा उठाया गया है, वह सच्चे ब्राह्मणत्व को जगाने के लिए है। विरोध पाखण्ड का ही किया गया है। जेतवन में एक जटिल ब्राह्मण के प्रति बुद्ध की उक्ति

न जटाहि न गोत्तेन न जच्चा होति ब्राम्हणो।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुची सो च ब्राम्हणो॥

[नहीं ब्राह्मण है कोई जटा से जाति-गोत्र से,
सत्य का धर्म को धार शुचि ब्राह्मण है वही।]

गाथा—२६ ३९२

जाति, गोत्र और जटाओं की जटिलता से छूटने के लिए आज भी इस वाणी का स्मरण आवश्यक है। ब्राह्मण के अग्निहोत्र का उल्लेख इस गाथा के पहले इस प्रकार हुआ है

यम्हा धम्मं विजानेय्य सम्मासम्बुद्ध देसितं।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य अग्गिहुत्तं व ब्राह्मणो ॥

[ज्ञान हो जिसके द्वारा सम्यक् संबुद्ध धर्म का,
उसे नमन से पूजे विप्र ज्यों अग्निहोत्र को।]

गाथा—२६ ३९२

अग्निहोत्र का यह उल्लेख यहाँ समादर के साथ ही है। तीखे शब्दों में विरोध और निन्दा भी मिलती है, परन्तु वह बनावट और ढोंग के लिए है

किं ते जटाहि दुम्मेध ! किं ते अजिनसाटिया ?
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥

[दुर्बुद्धे, क्या जटाओं से और क्या मृगचर्म से,
अभ्यन्तर किये काला, धो रहा निज बाह्य तू।]

गाथा—२६-३९४

ब्राह्मण वर्ग ग्रन्थ के अन्त में होने से अनुमान किया जा सकता है कि सच्चे ब्राह्मणत्व की कितनी प्रतिष्ठा तथागत करते थे। क्षत्रियत्व के सम्बन्ध में उनकी भावना इस गाथा में अभिव्यक्त हुई है—

दिवा तपति आदिच्चो रत्तिमाभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तं बुद्धो तपति तेजसा॥

[दिन में दीप्त आदित्य, रात्रि में दीप्त चन्द्रमा,
दीप्त क्षत्रिय सन्नद्ध, दीप्त ध्यानस्थ ब्राह्मण,
सर्वत्र ही अहोरात्र तेजोदीपित बुद्ध हैं।]

गाथा—२६-३८७

स्वयं अपने सम्बन्ध में तथागत का यह कथन कितना स्पष्ट है

सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि
सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो
सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं ?

[हूँ सर्ववेत्ता सबका विजेता
छूता मुझे रंच न धर्म कोई।
अतृष्ण हूँ, मुक्त अशेष दाही,
अभिज्ञ लूँ मैं किससे सुदीक्षा ?]

गाथा—२४-३५३

रग मच पर किसी पुण्य पुरुष का अभिनय करते हुए अभिनेता को जैसे अपने अभिनेय का कुछ सस्पर्श, क्षण भर के लिए ही सही, होता दीख पडता है, वैसे ही इस कोटि के वचन उच्चारित करते हुए सामान्य पाठक भी अपने में किसी ऊँचाइ का अनुभव कर सकता है। इसीसे ऐसी वाणी का उच्चारण और मनन सदैव श्रेयस्कर है। तथापि इस गाथा में तथगात का अलोकसामान्य रूप ही प्रकट हुआ है। पढकर श्रद्धा और भक्ति का उद्रेक एक साथ होता है और यह लाभ भी अमूल्य और दुर्लभ ही है। फिर भी सर्व सामान्य के लिए इस भाव के साथ तादात्म्य स्थापित कर सकना कठिन है। परन्तु पाठक जब यह गाथा पढता है—

> अह नागो व सगामे चापता पतित सर।
> अतिवाक्य तितिक्खिस्स दुस्सीलो हि बहुजनो॥
>
> [रण में सह लेता है सन्धाने शर नाग ज्यों,
> दुर्वाक्य सह लूँगा मैं दु शीलबहुला धरा।]
>
> गाथा—२३-३२०

तब अपनी त्रुटियों और अभावों से अभिज्ञ होते हुए भी वह अपने में वीरत्व का अनुभव करता है। उसे प्रतीत होता है, हम भी दु शीलों के वाक्य-बाण सह सकेंगे! सामान्य पाठक के मन पर पडा हुआ यह प्रभाव सामान्य बात नहीं है। भारतवष के मानस लोक में

इन गाथाओं के सहस्रों बरसों से मुखरित होते रहने के कारण ही अपने महान् नि शस्त्र सेनापति के नेतृत्व में वह अभी कुछ ही पहले पर-शासन से मुक्ति का अपना ऐसा अहिंसक अभियान सफल कर सका है कि जिसका उदाहरण संसार के इतिहास में अन्यत्र नहीं मिल सकता।

इस गाथा में उदाहृत हाथी का सहिष्णु शौर्य इस भूमि की विशेषता है। किन्तु आगे चलकर निषादी के उदाहरण से पाठक के वीरभाव को और भी नई गति मिलती है। पिछले समय में बोधिसत्व का मन भी यथारुचि इधर-उधर छुटा रहा है, यह ज्ञान उसे उनके साथ अपनी तुलना कर सकने का गौरव देकर उसका हृदय छू लेता है और अपने को वह और ऊँचे स्थान पर आरूढ हुआ पाता है

इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं
येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो
हत्थिप्पभिन्नं विय अंकुसग्गहो ॥

[यथेच्छ मेरा मन पूर्वकाल में
घुला फिरा है सुख से जहाँ कहीं।
इसे करूँगा वश अंकुशाग्र से,
यथा निषादी मदमत्त नाग को।]

गाथा—२३-२२६

इन गाथाओं के संग्रहकर्ता भिक्षु थे। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वे मुख्यत ऐसे वचन चुनते जो कहीं भी परिभ्रमण करते हुए भारी न बैठें। फिर भी इनमें भिक्षुओं के अतिरिक्त अन्य जनों के लिए भी बहुत कुछ है। जेतवन में पाँच सौ भिक्षुओं को उपदेश करते हुए भगवान् का वचन है

वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति।
एवं रागञ्च दोसञ्च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो॥
[यूथिका झाड देती है फूल वे सब म्लान जो,
भिक्षुओ, छोड दो त्यों ही राग को और द्वेष को।]

गाथा—२५-३७७

लताओं को अपने म्लान पुष्प झाडते हुए केवल उसी भिक्षु-संघ ने नहीं देखा था, अपने बाग-बगीचों में हम सभी यह सब देखते हैं। अत हम सभी इस गाथा का सौरभ पा सकने के अधिकारी हैं।

'यदि तोर डाक शुने केउ ना आसे' नामक रवीन्द्रनाथ के गीत के 'एकला चल' के सम्बन्ध में कहा जाता है कि कितने ही युवक इसका उच्चारण करते हुए अपने क्रान्ति पथ में मृत्यु को सानन्द भेंट चुके हैं। इस पर से यह अनुमान हम सहज ही कर सकते हैं कि धम्मपद की इस गाथा ने अमृत तीर्थ के अगणित यात्रियों को कितना अभय और कितनी प्रेरणा दी होगी

चर चे नाधिगच्छेय्य सेय्य सदिसमत्तनो।
एकचरियं दळ्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता ॥

[सहचारी न हो कोई श्रेष्ठ या निज तुल्य, तो
चले सुदृढ़ एकाकी, मूर्ख की क्या सहायता।]

गाथा—५-६१

और यह गाथा आज भी हमारे लिए जीवनमन्त्र का काम दे सकती है—

अक्कोधेन जिने कोधं असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं ॥

[क्रोध अक्रोध से जीते, साधुता से असाधुता,
लोभी को दान से जीते, सत्य द्वारा असत्य त्यों।]

गाथा—१७-२२३

आज के लुब्धक संसार में इसी बोध की आवश्यकता हमें है। जातक कथाओं में कहा गया है कि मनुष्यों ही नहीं, पशु-पक्षियों तक में अवतरित होकर, उतरकर, अनेक जन्मों की सिद्धि के रूप में बहु बोधिसत्वों ने इस परम ज्ञान की उपलब्धि की है। अत गौतम अधिकार पूर्वक ही कहते हैं

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो ।
अत्तान उपम करवा न हनेय्य न घातये ॥
सब्बे तसन्ति दण्डस्स, सब्बेस जीवित पियं ।
अत्तान उपम करवा न हनेय्य न घातये ॥

[दण्ड-त्रास सभीको है, सभीको भय मृत्यु का,
आत्म ज्यों सबको जाने, आघाते न हने कहीं ।
दण्ड-त्रास सभीको है, सभी जीवन चाहते,
आत्म-ज्यों सब को जाने, आघाते न हने कहीं ।]

१०—१२९-१३०

भाव एक ही है, किन्तु भिन्न भिन्न स्वरों में आरोह-अवरोह के साथ गुनगुनाया गया है। पुनरुक्तियाँ हैं, तो वे भी आभूषण बन कर शोभित हो उठी हैं। पाठक को यह नहीं जान पड़ता कि उस पर कुछ लादा जा रहा है। इसी से धम्मपद की ये गाथाएँ छन्द से उठ कर गीत बन गई हैं। उनकी टेक दूर दूर तक मुखरित है, जैसे हमारे लिए भी छूट हो कि भाव को इसी प्रकार हम भी आगे बढ़ा सकते हैं।

कितना उल्लास है इन उद्‌गारों में !

सुसुखं वत जीवाम वेरिनेसु अवेरिनो।
वेरिनेसु मनस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥

सुसुख वत जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।
आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥
सुसुख वत जीवाम उस्सुकेसु अनुस्सुका ।
उस्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अनुस्सुका ॥
सुसुख वत जीवाम येस नो नत्थि किञ्चन ।
पीतिभक्खा भविस्साम देवा आभास्सरा यथा ॥

[सुख से हम जीते हैं वैरियों में अवैर हो ,
वैर हीन सवैरों में विहार करते अहो ।
सुख से हम जीते हैं रोगियों में अरोग हो ,
रोग हीन स - रोगों में विहार करते अहो ।
सुख से हम जीते हैं रागियों में अराग हो ,
रागहीन स - रागों में विहार करते अहो ।
सुख से हम जीते हैं जो अकिंचन ही अहो ।
आभास्वर सुरों जैसा लेंगे आहार प्रीति का ॥]

गाथा—१ -१९७ २००

पच्चीस शतियाँ बीत चुकी हैं जब तथागत ने प्रीति का आहार ग्रहण करने का यह सकल्प किया था। अब यह देखने का अवसर है कि हम कितना क्या उन्हें अर्पित कर सके हैं। उस समय के लोगों की स्थिति इस गाथा में अभिव्यक्त है—

सुजीवं अहिरीकेन काकसूरेन धंसिना।
पक्खन्दिना पगब्भेन संकिलिट्ठेन जीवितं ॥
[जो निर्लज्ज वृथामानी काकशूर विघातकी,
हीनवृत्ति दुराचारी दीखते हैं सुखी यहाँ।]
गाथा—१८-२४४

लगता है, वह स्थिति आज भी वैसी ही है। लोगों की विध्वंस वृत्ति में भी अन्तर पड़ा नहीं जान पड़ता। हाँ, उनकी संहार शक्ति और बढ़ गई है। इससे यह अवश्य हुआ है कि बड़ी-बड़ी राज शक्तियाँ भी हिंसकास्त्रों से अपने को सुरक्षित न पाकर शान्ति के पथ की ओर उन्मुख हैं। आज के अन्धकार में आशा की यही किरण बहुत बड़ी है। हमारी कामना है, ऐसे में ये बुद्ध-वचन हमें सुबुद्धि देकर लोक के उद्धार में सहायक हों—

न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥
[वैर से वैर की शान्ति होती नहीं कदापि है,
शान्ति निर्वैर से ही है, यही धर्म सनातन।]

सियारामशरण गुप्त

सूची

बुद्ध-वचन
(धम्मपद)

श्री

बुद्ध-वचन

(धम्मपद)

१—यमक वर्ग

१

स्थान—श्रावस्ती व्यक्ति—चक्खुपाल थेर

मन पूर्वग हैं धर्म, मन श्रेष्ठ, मनोमय।
सदोष मन बोले वा करे जो, दुःख हैं लगे—
गाड़ी के बैल के पीछे चलते चक्र से उसे ॥

२

श्रावस्ती मट्ठ कुंडली

मन पूर्वग हैं धर्म, मन श्रेष्ठ, मनोमय।
प्रसन्न-मन बोले वा करे जो, सुख सर्वदा—
उसके अनुगामी हैं, छाया ज्यों अनपायिनी,

३

श्रावस्ती (जेतवन) थुल्लतिस्स (थेर)

कोसा, मारा, हराया है, धन छीना, छला मुझे,
उनका—गाँठते जो यों वैर शान्त नहीं कभी।

४

कोसा, मारा, हराया है, धन छीना, छला मुझे,
खुली ये जिसकी गाँठें उसका वैर शान्त है।

५

श्रावस्ती (जेतवन) काली (यक्षिणी)

वैर से वैर की शान्ति होती नहीं कदापि है,
शान्ति निर्वैर से ही है, यही धर्म सनातन।

६

श्रावस्ती (जेतवन) कोसम्बक भिक्खु

जाना हमें यहाँ से है नहीं इतर जानते,
जाना यह जिन्होंने है उनके द्वन्द्व शान्त हैं।

७

श्रावस्ती चुल्लकाल, महाकाल

डोलता सुख भोगों में इन्द्रियों में अनिग्रही ,
अज्ञ आहार-मात्रा का, कुसीदी, हीनवीर्य जो ,
उसे मार गिरा देता वायु ज्यों शुष्क वृक्ष को ।

८

नहीं जो सुख भोगों में, इन्द्रियों में सुनिग्रही ,
ज्ञाता आहार मात्रा का, श्रद्धावान्, वीर्यवन्त जो ,
नहीं मार डिगा पाता उसे ज्यों वायु शैल को ।

९

श्रावस्ती (जेतवन) देवदत्त

दम से, सत्य से रीता निष्कषाय हुआ न जो ,
व्यर्थ ही उसने धारे वस्त्र काषाय देह में ।

१०

दान्त जो, सत्यधारी जो, है समाहित शील में ,
निष्कषाय वही व्यक्ति योग्य काषाय वस्त्र के ।

११

राजगृह (वेणुवन) सञ्जय

जिनका सार नि सार, एव नि सार सार है,
सार से सर्वदा सूने मिथ्या सकल्प मग्न वे।

१२

जानते सार को सार, त्यों असार असार को,
सार निश्चय पाते हैं सम्यक् सकल्प लग्न वे।

१३

श्रावस्ती (जेतवन) नन्द (थेर)

गेह छप्पर झीने का मेह से बचता नहा,
नहीं है राग से रक्षा त्यों अभावित चित्त की।

१४

गेह जो ठीक से छाया है निरापद मेह में,
राग-मुक्त सदा त्यों ही है सुभावित चित्त भी।

१५

राजगृह (वेणुवन) चुन्द (सूकरिक)

यह लोक कि अन्य लोक हो,
सुकृती को सब ठौर शोच है।
निज दुष्कृति देखके सदा
रहती है चिर वेदना उसे।

१६

श्रावस्ती (जेतवन) धार्मिक (उपासक)

यह लोक कि अन्य लोक हो,
सुकृती को सब ठौर हर्ष है।
शुचि सत्कृति देख के सदा
रहता मोद प्रमोद ही उसे।

१७

श्रावस्ती (जेतवन) देवदत्त

यह लोक कि अन्य लोक हो,
रहता है चिरतप्त पातकी।
बहु दुर्गति दुःख है सदा,
'कुकृती हूँ' यह सोचके उसे।

१८

श्रावस्ती (जेतवन) सुमना देवी

यह लोक कि अन्य लोक हो,
रहता है सुकृती सदा सुखी।
सुख सद्गति लाभ है सदा
'सुकृती हूँ' यह सोच के उसे।

१९

श्रावस्ती (जेतवन) दो मित्र भिक्षु

गावे भले निरंतर संहिताएँ,
आयत्त होती न प्रमत्त को हैं।
गायें पराई गिनके हुआ है
क्या गोप कोई बहुभाग्यशाली?

२०

सचेत आचारित संहिता का
अत्यल्प भी वाचन धर्मकारी।
जिसे न हो मोह न राग द्वेष,
हो ज्ञान सम्यक्, सुविमुक्त चित्त,
वही उपादान विहीन व्यक्ति
यहाँ-वहाँ है बहुभाग्यशाली।

२—अप्रमाद वर्ग

२१

कौशाम्बी (घोषिताराम)   सामावती (रानी)

वही अमृत पाते हैं मुक्त हैं जो प्रमाद से ,
अप्रमत्त चिरजीवी, प्रमत्त मृत तुल्य हैं ।

२२

यों विचार सुधी ज्ञानी प्रमाद पथ छोड़ते ,
आर्य शील समाचारी पाते निर्भ्रान्त मोद हैं ।

२३

धीर जो, नित्य ध्यानी जो, अखंडित पराक्रमी ,
निर्वाण गति पाते हैं योग क्षेम वरिष्ठ वे ।

२४

राजगृह (वेणुवन) कुम्भघोषक

स्मृतिमन्त सचेत उद्यमी
करता है सविवेक कर्म जो,
उसका, उस धर्मनिष्ठ का,
बढ़ता है यश लोक में सदा।

२५

राजगृह (वेणुवन) चुल्लपन्थक (थेर)

अनालस्य समुत्थान दम-संयम से सुधी
रक्षा द्वीप बना लें जो बाढ़ में न बहे कभी।

२६

श्रावस्ती (जेतवन) बालनक्खत्तघुट्ठ (होली)

शून्य जो मति-मेधा से रहते हैं प्रमाद में,
रखते धन के जैसा उत्साह मतिमान हैं।

२७

न कदापि प्रमादी हो, न काम-मद-मत्त ही,
अपार सुख सेवी वे ध्यानी उत्साह युक्त जो।

३१

जेतवन कोई भिक्षु

भिक्षु जो चिर उत्साही, भयदर्शी प्रमाद में,
जलाता वह जाता है सर्व बन्धन अग्नि ज्यों।

३२

जेतवन (निगम-वासी) तिस्स थेर

भिक्षु जो चिर उत्साही, भयदर्शी प्रमाद में,
उसे बाधा नहीं कोई, निर्वाण निकटस्थ है।

३—चित्त वर्ग

३३

चालिय पर्वत मेघिय (थेर)

दुर्निवारण दुर्दम्य चल चंचल चित्त को
मेधावी करता सीधा—बाण को बाणकार ज्यों।

३४

निकाल सरसी में से सूखे में क्षिप्त मीन ज्यों
चित्त आकुल है—कैसे मार के फन्द से बचे।

३५

श्रावस्ती कोइ

कामचारी सुदुस्साध्य दौड़ता रहता सदा,
चित्त का रोकना अच्छा, दान्त चित्त सुखावह।

३६

श्रावस्ती कोई उत्कंठित भिक्षु

महा कुटिल दुर्बोध दौड़ता रहता सदा,
मेधावी चित्त सरखे,—रखा सुखद चित्त की।

३७

श्रावस्ती संघरक्खित (थेर)

दूरगामी अकेला ही गुहागूढ़ अदेह है,
जीत ले चित्त जो ऐसा मार-बन्धन मुक्त सो।

३८

श्रावस्ती चित्तहत्थ (थेर)

नहीं सद्धर्म को जाने, अव्यवस्थित चित्त जो,
प्रसाद गुण से रीता, प्रज्ञा लाभ उसे कहाँ।

३९

स्थिर निर्मल चेता जो उठा है पुण्य पाप से,
चिर जाग्रत सर्वत्र, कोई भय नहीं उसे।

४०

श्रावस्ती पाँच सौ विपश्यक भिक्षु

विनश्य जानो तनु है घड़े सा,
स्वचित्त को त्यों पुर तुल्य मानो।
प्रज्ञायुधी होकर मार जीतो,
करो स्वरक्षा रह वीतराग।

४१

श्रावस्ती पूतिगत्त तिस्स (थेर)

काठ की खपची जैसी निरर्थ हतचेत हो
अहो तुच्छतमा काया सोएगी शीघ्र भूमि में!

४२

कोसलदेश नन्द (गोप)

हिंस्र हिंसक का, बैरी बैरी का अपकारक
नहीं है उतना, जैसा अपना चित्त पातकी।

४३

कोसलदेश सोरेय्य (थेर)

निज माता-पिता एवं ज्ञाति बान्धव भी कहीं,
श्रेयस्कर नहीं कोई सम्यक् प्रेरित चित्त-सा।

४—पुष्प वर्ग

४४

श्रावस्ती पाँच सौ भिक्षु

अवनी यमलोक स्वर्ग का
निजयी जो वह व्यक्ति कौन है,
उपदिष्ट प्रसून धर्म के
चुन ले जो पटु माल्यकार-सा?

४५

अवनी यमलोक स्वर्ग का
निजयी वीर प्रवीण शेक्ष सो—
उपदिष्ट प्रसून धर्म के
चुन लेगा पटु माल्यकार सा।

४६

श्रावस्ती मरीचि (कम्मट्ठानि थेर)

हुआ जिसे बोध विनश्य काया—
मरीचिका बुद्‌बुद रूपिणी है,
जयी वही मार प्रसूनकों का,
कृतान्त सीमा उसने उलघी।

४७

श्रावस्ती विडूडभ

कामना-पुष्प-लुब्धों को ले जाता धर काल यों,
बढ़ाके बाढ़ ले जाती ज्यों निद्रा-मग्न ग्राम को।

४८

श्रावस्ती पतिपूजिका

वाञ्छाओं, वासनाओं के प्रसून चुन जो रहे,
अतृप्त उन लुब्धों को धर लेता कृतान्त है।

४९

श्रावस्ती (कंजूस) कोसिय सेठ

अम्लान रख के भौंरा वर्ण-गन्ध प्रसून का,
ले जाता रस,—वैसे ही विचरें मुनि ग्राम में।

५०

श्रावस्ती पाठिक (आजीवक साधु)

पर-हानि नहीं चाहे, पर-दोष नहीं सुने ,
देखे-सुने स्वय का ही—क्या किया, क्या नहीं किया।

५१

श्रावस्ती छत्तपाणि (उपासक)

व्यर्थ निर्गन्ध होने से वर्णशोभन पुष्प ज्यो ,
व्यर्थ त्यों मृदु वाणी भी परिपालित जो नहीं।

५२

सार्थ है गन्ध होने से वर्णशोभन पुष्प ज्यों ,
सार्थ त्यों मृदु वाणी भी परिपालित जो हुई।

५३

श्रावस्ती पूर्वाराम विशाखा (उपासिका)

मालाएँ गूँथती जैसे पुष्पों का बहु राशि से ,
वैसे ही मर्त्य प्राणी के कुशली बहु कार्य हैं।

५४

श्रावस्ती आनन्द (थेर)

बेला जुही चन्दन की सुगन्धि ,
जाती नहीं वायु-दिशा-विरुद्ध ,
विमुक्त है सौरम सज्जनों का ,
सर्वत्र जाता, सब ओर जाता ।

५५

बेला हो कि चमेली या पद्मा तगर चन्दन ,
सभी सुरभियों से है बड़ी सुरभि शील की ।

५६

राजगृह (वेणुवन) महाकस्सप

जाती सुरभि थोड़ी ही दूर चन्दन आदि की ,
देवों तक सुशीलों का जाता उत्तम गन्ध है ।

५७

राजगृह (वेणुवन) गोधिक (थेर)

निरालस सुधी सम्यग् ज्ञानी मुक्त सुशील जो ,
रुद्ध होने नहीं पाती उनकी गति मार से ।

५८

जेतवन गरहदिन

मैल में जो गया फेंका कूड़े के उस ढेर में
शुचिगन्ध मनोहारी होता उत्पन्न पद्म है।

५९

त्यों ही अन्ध असंस्कारी पुरषों के समूह में,
प्रज्ञा दीपित होता है सम्यक् संबुद्ध श्रावक।

५—मूर्ख वर्ग

६०

श्रावस्ती (जेतवन) — दरिद्र सेवक

जागते को निशा भारी, भारी योजन श्रान्त को ,
मूर्खों को भव है भारी जो सद्धर्म न जानते ।

६१

राजगृह — सार्द्धविहारी शिष्य

सहचारी न हो कोई श्रेष्ठ या निज तुल्य तो—
चले सुदृढ एकाकी मूर्ख की क्या सहायता ।

६२

श्रावस्ती — आनन्द (सेठ)

'सुत है, वित्त है मेरा' सोचता ज्ञानहीन ही ,
नहीं है निज आत्मा ही किसका सुत वित्त है ।

६३

श्रावस्ती (जेतवन) गिरहकट चोर

अज्ञता मान लेता जो अपनी वह सुज्ञ है,
पाण्डित्य अभिमानी जो वह मूर्ख यथार्थत ।

६४

श्रावस्ती (जेतवन) उदायी (थेर)

मूर्ख आजन्म ज्ञानी की सेवा में रहता हुआ,
धर्म जान नहीं पाता, दर्वी ज्यों स्वाद सूप का।

६५

श्रावस्ती (जेतवन) भद्रवर्गीय (भिक्षुलोग)

सुबोध रह ज्ञानी की सेवा में क्षणमात्र ही,
जान सद्धर्म जाता है, जिह्वा ज्यों स्वाद सूप का।

६६

राजगृह (वेणुवन) सुप्पबुद्ध (कोढ़ी)

बनता अपना वैरी मूढ़ दुर्मति आप ही,
करता पाप है ऐसे देते फल विषाक्त जो।

६७

जेतवन — कोई कृषक

वह कर्म नहीं अच्छा जिससे अनुताप हो,
जिसे कर दुखी होके रोना पड़े विपाक में।

६८

राजगृह (वेणुवन) — सुमन (माली)

कृत कर्म वही अच्छा पीछे से ताप जो न दे,
जिसके फल मीठे हों, दें प्रीति प्रसन्नता।

६९

जेतवन — उत्पलवर्णा (थेरी)

पका पाप नहीं है तो लगता मिष्ट मूढ़ को,
पका वह जहाँ वैसे दुःख दुर्गति हो रही।

७०

राजगृह (वेणुवन) — जम्बुक (आजीवक साधु)

करे भोजन अज्ञानी मास-मास कुशाग्र से,
रंच भी ज्ञातधर्मा-सी तुल्य होगा नहीं उसे।

७१

राजगृह (वेणुवन) आ

ज्ञात खट्टा नहीं होता दुष्पाप नव दुग्ध सा ,
दहता वह मूढ़ों को भस्माच्छन्न कृशानु ज्यों ।

७२

राजगृह (वेणुवन) सट्टिकूट (पे

अनर्थकर होता है जितना ज्ञान मुग्ध का ,
पुनः मुहँ फुकाना ही पड़ता उससे उसे ।

७३

जेतवन सुधम्म (थे

असत् ये भावनाएँ हैं—भिक्षुओं में बड़ा बनूँ ,
पुजूँ अन्य जनों में भी, श्रीसम्पन्न निवास हो ,

७४

बखानें कृत मेरा ही परिव्राजक या गृही ,
अधीन सब हों मेरे कृत्य किंवा अकृत्य से ,
इच्छा अहम् बढ़ाते हैं ऐसे संकल्प मूढ़ के ।

७५

श्रावस्ती (जेतवन) वनवासी तिस्स (थेर)

भिन्न वैभव की पन्था भिन्न निर्वाण की तथा ,
जान ले मति से ज्ञानी भिक्षु श्रावक बुद्ध का ।
न फूले अभिनन्दों से करे वृद्धि विवेक में ।

६—पण्डित वर्ग

७६

जेतवन — राध (थेर)

माने निधिप्रवक्ता-सा वर्ज्य-ज्ञापक व्यक्ति को,
दिखादे दोष जो ज्ञानी सत्संग उसका करे,
ऐसे की परिसेवा में है सुमंगल सर्वदा।

७७

जेतवन — अस्सजी पुनब्बसु

जो सदाचार में टोके, रोके और खरी कहे,
सीठा वह अशिष्टों का, मीठा सज्जन वृन्द का।

७८

जेतवन — छन्न (थेर)

भजे न पापचारी को, न नराधम मित्र को,
सेव्य सन्मित्र श्रेयार्थी, पुरुषोत्तम सेव्य है।

७६

जेतवन महाकप्पिन (थेर)

सुधर्मा सुख से सोता सुप्रसन्न सुचित्त हो ,
रमा है नित मेधावी आर्यबोधित धर्म में ।

८०

जेतवन पंडित सामणेर

जल को कृषिकार बाँधता ,
शरवाला शर को सँभालता ।
पटु तक्षक दारु छीलता ,
रहता आत्मयती सुबुद्धि है ।

८१

जेतवन भद्दिय (थेर)

नहीं कम्पित होता है महा शैल समीर से ,
वैसे ही स्तुति निन्दा में धीमान डिगता नहीं ।

८२

जेतवन काण-माता

गभीर ह्रद होता है स्वच्छ और प्रसन्न ज्यों ,
सुन धर्मकथा त्यों ही होते सुखी सुमेध हैं ।

८३

जेतवन   पाँच सौ भिक्षु

सभी कहीं सज्जन घूमते हैं ,
होते नहीं काम-प्रलुब्ध किंचित् ।
हो सौख्य की प्राप्ति कि दुःख की ही ,
धीमान जो में न विकार लाते ।

८४

जेतवन   धम्मिक (थेर)

न तो स्वय और न अन्य हेतु—
पुत्रादि एव धन राष्ट्र चाहे ।
समृद्धि चाहे न अधर्म द्वारा ,
वही सुधी शील सुधर्मचारी ।

८५

जेतवन   धर्मश्रवण

ऐसे पुरुष थोड़े ही जाते हैं पर पार जो ,
दौड़ते हैं किनारे ही बहुधा लोक में सभी ।

८६

जन धर्मानुवर्ती जो उपदिष्ट सुधर्म मे ,
मृत्यु दुस्तर-धारा का पार पा सकता वही ।

८७

जेतवन पाँच सौ नवागत भिक्षु

गहे विमल सद्धर्म तजे कलुष युक्त जो ,
गेहता त्याग के धारे सविवेक अगेहता ,

८८

तज राग वहाँ सारे अकिंचन अकाम हो ,
चित्त के बहु क्लेशों से आत्मशोध करे सुधी ।

८९

हुआ सम्बोधि-अगों में भव्य भावित चित्त जो ,
सर्व सग्रह त्यागी जो अपरिग्रह युक्त है ,
क्षीणास्रव प्रभावन्त वह निर्वृत हो चुका ।

९६

जेतवन कोसम्बिवासित तिस्स (थेर)

प्रशान्त उनके जैसे सम्यक् ज्ञान विमुक्त जो,
रहते हैं सदा शान्त वाणी से कर्म से तथा।

९७

जेतवन सारिपुत्र (थेर)

नहीं है जिसमें मिथ्या श्रद्धा आशा कृतज्ञता
अवकाश तथा सन्धि पुरुषश्रेष्ठ है वही। *

९८

जेतवन रेवत (थेर)

नीचा हो ठौर या ऊँचा ग्राम हो कि अरण्य हो,
वही भूमि सुरम्या है वीतराग रमें जहाँ।

९९

जेतवन आरण्यक भिक्षु

रमणीय घनारण्य जाते जन नहीं जहाँ,
वीतराग अनाकाङ्क्षी निर्द्वन्द्व रमते वहीं।

८—सहस्र वर्ग

१००

वेणुवन तम्बदाठिक (चोरघातक)

अनर्थक गिरा से,—जो हो सहस्र पदान्विता ,
एक अर्थपदी अच्छी शान्ति हो सुनके जिसे ।

१०१

जेतवन दारुचीरिय (थेर)

सहस्रपद गाथा से, अनर्थ पद पूर्ण जो—
एक गाथापदी अच्छी, शान्ति हो सुनके जिसे ।

१०२

जेतवन कुंडलकेशी (थेरी)

रहें ने शत गाथाएँ अनर्थ पदपूरिता ,
एक धर्मपदी अच्छी वह जो शान्तिदायिनी ।

१०३

सहस्रों पुरुषों को जो जीत ले रणभूमि में ,
श्रेष्ठ है जन ऐसे से एक आत्मजयी सदा ।

१०४

जेतवन अनर्थ पुच्छक ब्राह्मण

अन्यान्य सब जीतों से निज की जीत श्रेष्ठ है ,
सदा संयतचारी जो, सदा दान्त प्रशान्त जो ,

१०५

देव गन्धर्व ब्रह्मा की, मार की शक्ति भी नहीं ,
कहीं पलट दें जो ये उसकी जीत हार में ।

१०६

वेणुवन सारिपुत्त के मामा

यजे यज्ञ सहस्रों का सौ वर्ष प्रतिमास जो ,
ऐसा जन जितात्मा को पूजे एक मुहूर्त तो—
सम्पूर्ण उन होमों से यह पूजन श्रेष्ठ है ।

१०७

वेणुवन सारिपुत्त का भांजा

कोई परिचरे अग्नि शत वर्ष अरण्य में ,
ऐसा जन जितात्मा को पूजे एक मुहूर्त तो
सम्पूर्ण उन होमों से यह पूजन श्रेष्ठ है ।

१०८

वेणुवन सारिपुत्त का मित्र ब्राह्मण

पुण्यार्थियों के, सुकृतार्थियों के ,
जो अग्निहोत्रादिक वर्षव्यापी ,
पाते नहीं वे ऋजु सज्जनों को
किये गये एक प्रणाम को भी ।

१०९

अरण्यकुटी दीर्घायुकुमार

वृद्धों की नम्र सेवा से अजस्र अभिवृद्धि है
सुख की बल की एव आयु की और वर्ण की ।

१११०

जेतवन — संकिच्च सामणेर

जिये सौ वर्ष का जीना दुःशील असमाहित,
उससे शील-ध्यानी का श्रेष्ठ है वर्ष एक ही।

१११

जेतवन — कोण्ड (थेर)

जिये सौ वर्ष का जीना दुष्प्रज्ञ असमाहित,
उससे प्राज्ञ ध्यानी का श्रेष्ठ है वर्ष एक ही।

११२

जेतवन — सप्पदास (थेर)

जिये सौ वर्ष का जीना कुसीदी हीनवीर्य जो,
उससे वीर्यधारी का श्रेष्ठ है वर्ष एक ही।

११३

जेतवन — पटाचारा थेरी

जिये सौ वर्ष का जीना अदर्शी आदि-अन्त का,
उससे तत्वदर्शी का श्रेष्ठ है वर्ष एक ही।

११४

जेतवन किसा गोतमी

जिये सौ वर्ष का जीना अदर्शी अमृतत्व का,
उससे मुक्तिदर्शी का श्रेष्ठ है वर्ष एक ही।

११५

जेतवन बहुपुत्तिका (थेरी)

जिये सौ वर्ष का जीना बिना जाने सुधर्म जो,
उससे धर्मदर्शी का श्रेष्ठ है वर्ष एक ही।

११६

जेतवन

हटे कुकृत से पीछे त्वरा कल्याए
पुण्य में मन्दता हो तो रमता ि

११७

जेतवन

हो ही पाप कहीं जाये बार-बार
बने न पाप का रागी पाप सच

११८

जेतवन

पुण्य कार्य करे एक फिर से फिर

११९

जेतवन अनाथपिंडिक सेठ

क्षेम ही मानता पापी वह पाप पका न जो,
पापी भी जान जाता है पक पाप गया जहाँ।

१२०

भद्र के भी लिए क्लेश वह पुण्य पका न जो,
भद्र भी क्षेम पा जाता पका पुण्य गया जहाँ।

१२१

जेतवन असंयमी (भिक्षु)

'लगेगा पाप कैसे' यों करे न अवहेलना,
घड़ा भी भर जाता है नीर के बिन्दु-बिन्दु से,
मूर्ख जो भरते जाते क्रमश पाप का घड़ा।

१२२

जेतवन बिलालपाद (सेठ)

'पुण्य है कितना-सा' यों करे न अवहेलना,
घड़ा भी भर जाता है नीर के बिन्दु बिन्दु से।
धीर जो भरते जाते क्रमश पुण्य का घड़ा।

१२३

जेतवन — महाधन (वणिक्)

कुपथ तज देता है अल्प सार्थ धनी वणिक ,
विष ज्यों जीवनाकांक्षी जन त्यों पाप को तजें ।

१२४

वेणुवन — कुक्कुटमित्त

उठा ले विष भी कोई व्रण जो हाथ में न हो ,
विष-पाप नहीं व्याती अव्रणी को, अ पाप को ।

१२५

जेतवन — कोक (कुत्ते का शिकारी)

निर्दोष को दूषणहीन को जो
बिना किसी कारण दोष देता ,
फेंके गये वायु समक्ष रेणु सा
सो दोष आके लगता उसीको ।

१२६

जेतवन — (मणिकारकुलूपग) तिस्स (थेर)

कोई नरक में जाते, कोई दुष्कृत गर्भ में ,
स्वर्ग सद्‌गत पाते हैं जो अनास्रव मुक्त वे ।

१२७

जेतवन ३ भिक्षु

आकाश में और समुद्र में त्यों
तमोमयी पर्वत की गुहा में,
नहीं कहीं ठौर जहाँ कुकर्मा
जाके बचे दुष्कृत-दुष्फलों से।

१२८

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम) सुप्पबुद्ध (शाक्य)

आकाश में और समुद्र में त्यों
तमोमयी पर्वत की गुहा में,
नहीं कहीं है वह ठौर कोई
ले जा सके मृत्यु नहीं जहाँ से।

१०—दण्ड वर्ग

१२९

जेतवन छब्बग्गिय (भिक्षु लोग)

दण्ड-त्रास सभीको है, सभीको भय मृत्यु का ,
आत्म ज्यों सबको जाने, आघाते न हने कहीं ।

१३०

जेतवन छब्बग्गिय (भिक्षु)

दण्ड-त्रास सभी को है, सभी जीवन चाहते ,
आत्म ज्यों सबको जाने, आघाते न हने कहीं ।

१३१

जेतवन बहुत से लड़के

सुखेच्छु सब भूतों का है जो घातक दण्ड से ,
वह आत्म सुखान्वेषी दुःखी है पर लोक में ।

१३२

सुखेच्छु सब भूतों का दण्ड घातक जो नहीं,
वह आत्म सुखान्वेषी सुखी है पर लोक में।

१३३

जेतवन कुण्डधान (थेर)

कहे न परुषा वाणी, मिलेंगे प्रतिवाक्य ही,
दुःख उद्दण्डता में है, दण्ड के प्रति दण्ड हैं।

१३४

टूटे झालर सा तूने मौन धारण जो किया,
मिटा कलह तो तेरा, तूने निर्वाण पा लिया।

१३५

श्रावस्ती (पूर्वाराम) विशाखा आदि (उपासिकाएँ)

ले जाता गोप डंडे से गायें गोचर भूमि को,
हाँकती आयु जीवों की मृत्यु और जरा तथा।

१३६

राजगृह (वेणुवन) अजगर (प्रेत)

मूढ़ बूझ नहीं पाता हो रहे हैं कुकर्म ये ,
तप्त होता स्वकर्मों से अग्नि से दग्ध व्यक्ति-सा ।

१३७

राजगृह (वेणुवन) महामोग्गलान (थेर)

दोष निर्दोष को दे जो, दण्ड दे जो अदण्ड को ,
इनमें से उसे कोई मिलती गति एक है—

१३८

बहु क्लेशकरी पीड़ा, अंगभंग शरीर का ,
महा रोगमयी बाधा एवं उन्माद चित्त में ;

१३९

राजाज्ञा-दण्ड की प्राप्ति, अपवाद भयंकर ,
विनाश निज लोगों का, हानि सम्पत्ति भोग की ;

१४०

अथवा भस्म हो जाता उसका घर आग में ,
अन्त में मृत्यु के पश्चात् पाता नरक वास है ।

१४१

जेतवन बहुभाण्डिक (भिक्षु)

न अग्निचर्या न जटा न भस्म ,
न अन्न का त्याग न भूमिशय्या ,
न आसनें ही उलटी कि सीधी ,
सुधार काली जन का करेंगी ।

१४२

जेतवन सन्तति (महामात्य)

सचित्त भी शान्त समत्वचारी ,
हो ब्रह्मचारी यत संयमी जो ,
नहीं किसीके प्रति दण्डधारी
सो साधु सो ब्राह्मण भिक्षु त्यागी ।

१४३

जेतवन पिलोतिक (थेर)

रुकें जो आप लज्जा से लोक में जन वे क्वचित् ,
कशा अग्राह्य निन्दा की खरे तुरग सी जिन्हें ।

१४४

उद्योग में उद्यम में सवेग
रहो कशाताड़ित अश्व जैसे,
सुशील श्रद्धायुत वीर्यवन्त हो
समाधि सद्धर्म विवेक धारणा,
विद्या-सदाचार व्रती बने रहो,
तभी बचोगे द्रुत दुःख जाल से।

१४५

जल को छषिकार बाँधता,
शरवाला शर को सँभालता,
पढ़ु तक्षक दारु छीलता
रहता आत्मयती सदा व्रती।

११—जरा वर्ग

१४६

जेतवन विशाखा की संगिनी

हर्ष हास कहाँ कैसे जलती इस आग में,
घिरे घोर अँधेरे में दीप क्यों खोजते नहीं?

१४७

राजगृह (वेणुवन) सिरिमा

चित्रिता सव्रणा काया खड़ी जो अस्थि-चर्म से,
देखो बहुल संकल्पा आतुरा और अस्थिरा!

१४८

जेतवन उत्तरी (थेरी)

जीर्ण रूप रुजा काया जर्जरा क्षणभंगुरा,
गलेगी यह दुर्गन्धा, जीवनान्तक मृत्यु है।

१४९

जेतवन　　अधिमान (भिक्खु)

शरद् कालीन तुम्बी सी फेंकी जो पथ में गई ,
भला श्वेत कपोतों-सी मोहेगी अस्थियाँ किसे ?

१५०

जेतवन　　रूपनन्दा (थेरी)

अस्थियों की पुरी मानो लिपी है रक्त मास से ,
जरा-मृत्यु अहता का ईर्ष्या का वास है यहाँ ।

१५१

जेतवन　　मल्लिका देवी

सुचित्रशोभी रथ जीर्ण होते ,
शरीर भी जीर्ण विशीर्ण होता ।
सुधर्म ही निर्जर सज्जनों का
कहा बड़ों ने यह है बड़ों से ।

१५२

जेतवन　　(लाल) उदायी (थेर)

बढ़ना बैल के जैसा मतिमन्द मनुष्य का ,
मास तो बढता जाता, सुबुद्धि बढ़ती नहीं ।

१५३

शोध में गृहकारी की दौड़ा हूँ जन्म-जन्म में ,
मिला न वह, पाया है भन दुःख पुन पुन ।

१५४

गृहकारी, तुझे पाया बनेगा फिर से नहीं ,
भग्न है धरनें, सारी, ढहा शिखर गेह का ,
हुआ चित्त निसस्कारी, तृष्णा का क्षय हो गया ।

१५५

वाराणसी ऋषिपत्तन महाधनी सेठ का पुत्र

ब्रह्मचर्य न साधे जो न जोड़े धन हो युवा ,
निर्मीन सर में बूढ़े क्रौंच सा वह दीन है ।

१५६

ब्रह्मचर्य न साधे जो न जोड़े धन हो युवा ,
गत के शोच में टूटे चाप सा वह है पड़ा ।

१६४

जेतवन काल (थेरी)

धर्म जीवित आर्यों के, अर्हतों के निदेश की
कोसता, दोष देता है जो दुर्मति कुभाव से ,
उसका बाँस का-सा ही आत्मघातक फूलना ।

१६५

जेतवन (चूल) काल (उपासक)

सालता अपने को ही किया हो पाप आप जो ,
आत्मशोधक होता है वह पाप किया न जो ,
शक्य है अपनी शुद्धि पर-शुद्धि अशक्य है ।

१६६

जेतवन अत्तदत्थ (थेर)

आत्मलाभ नहीं त्यागे, परार्थ बहु हो न क्यों ;
निजार्थ जान के पूरा सदर्थ रत ही रहे ।

१३—लोक वर्ग

१६७

जेतवन — कोइ अल्पवयस्क भिक्षु

हीन धर्म न स्वीकारे, स्वीकारे न प्रमत्तता,
मिथ्या दृष्टि न स्वीकारे, भव वृद्धि करे नहीं।

१६८

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम) — सुद्धोदन

उठ के, त्याग के निद्रा, सुधर्म नित आचरे,
सुखी धार्मिक सर्वत्र लोक में परलोक में।

१६९

आचरे धर्म निष्ठा से, अनिष्ठा से न आचरे,
सुखी धार्मिक सर्वत्र लोक में परलोक में।

१७०

जेतवन — पाँच सौ ज्ञानी (भिक्षु)

जैसे बुद्बुद को देखे, देखे जैसे मरीचिका ,
वैसे ही लोक को देखे, तब मृत्यु भला कहाँ ।

१७१

राजगृह (वेणुवन) — अभय राजकुमार

आओ हो, लोक को देखो जो राजरथ सा रँगा ,
जहाँ आसक्त अज्ञानी, अनासक्त अभिज्ञ हैं ।

१७२

जेतवन — सम्मुञ्जानि (थेर)

करके चूक जो कोई चूकता फिर से नहीं ,
वह लोक विभासी है मेघ से मुक्त चन्द्र ज्यों ।

१७३

जेतवन — अङ्गुलिमाल (थेर)

ढँके कुशल कर्मों से पाप जो अपने किये ,
वह लोक विभासी है मेघ से मुक्त चन्द्र ज्यों ।

१७४

आलवी रंगरेज की कन्या

लोक है यह अन्धा सा कुछ ही जन देखते ,
विरले स्वर्ग जाते हैं जाल मुक्त विहंग ज्यों ।

१७५

जेतवन तीस भिक्षु

जाते हैं हंस—योगी ज्यों—आदित्यपथ व्योम से ,
लोक से धीर जाते हैं जीत मार स वाहिनी ।

१७६

जेतवन चिंचा (माणविका)

धर्म को लाँघ जाता जो मृषावादी, तथा जिसे
न लोकान्तर की चिन्ता, उसे दुष्कार्य कौन सा ?

१७७

जेतवन (अयुक्त दान)

कदर्य को वर्जित देवलोक,
श्रौदार्य-सन्तोष उसे नहीं है।
दानानुमोदी जन धीर है जो
सुखी वही है परलोक पाके।

१७८

जेतवन अनाथपिंडिक के पुत्र का मरण

पृथ्वी के, सर्व लोकों के, स्वर्ग के श्राधिपत्य से,
फल स्रोतापत्ति का होता क्षेमकारक सर्वदा।

१४—बुद्ध वर्ग

१७९

उरुवेला (बोधिमंड)　　　　मागन्दिय (ब्राह्मण)

जिसका जित दुर्विजेय है ,
　　जिसकी भी जय अन्य की नहीं ,
उस बुद्ध अनन्त ज्ञान को ,
　　किसकी शक्ति भुला-डुला सके ?

१८०

जिसको विष-बन्धिनी तृषा
　　धर ले जा सकती नहीं कहीं ,
उस बुद्ध अनन्त ज्ञान को
　　किसकी शक्ति भुला-डुला सके ?

१८१

सकाश्य नगर देव, मनुष्य

धीर जो, ध्यानधारी जो, नैष्कर्म्य रत शान्त जो ,
सबुद्धों स्मृतिमन्तों के देव भी हैं पदस्पृही ।

१८२

वाराणसी एरकपत्त (नागराज)

दुर्लभ्य नर की काया जीना दुर्लभ्य मर्त्य का ,
धर्म का सुनना एव जन्म दुर्लभ्य बुद्ध का ।

१८३

जेतवन आनन्द (थेर) का प्रश्न

त्याग सम्पूर्ण पापों का, पुण्यों की उपसम्पदा ,
सर्वदा चित्त सशुद्धि बुद्धों का यह धर्म है ।

१८४

जेतवन आनन्द (थेर)

तप उत्तम है क्षमा तितिक्षा ,
परमा निर्वृति बुद्ध मानते हैं ;
परघातक प्रव्रजे भले ही
शुभ श्रामण्य कभी न पा सकेगा ।

१८५

कुत्सा त्याग, अनाघात, धारणा प्रातिमोक्ष की ,
ज्ञान आहार मात्रा का, एकान्त शयनासन ,
चित्त में स्थिरता योग,—बुद्धों का यह धर्म है ।

१८६

जेतवन उदास भिक्षु

वर्षा हो धन की तो भी अतृप्ति युत वासना ,
वासनाएँ सदा सीठी दुःखदायक जान के ,

१८७

दिव्य भोग रहें सौ सौ रहे विज्ञ असक्त हो ,
तृष्णा शमनकारी हैं सम्यक् सबुद्ध-श्रावक ।

१८८

जेतवन अग्निदत्त (ब्राह्मण)

जाके शरण लेते हैं मनुष्य भयभीत हो ,
उद्यान तरु चैत्यों का, गिरि और अरण्य का ;

१८९
ऐसा शरण होता है अक्षेमकर हीन ही ,
नहीं निस्तार दुःखों से ऐसे आधार में कहीं ।

१९०
जेतवन
अग्निदत्त (ब्राह्मण)
बुद्ध का धर्म का एव संघ का शरणाश्रया
जो चार आर्य सत्यों को प्रज्ञा से अवलोकता ,

१९१
दुःख, दुःख-समुत्पत्ति, अतिक्रमण दुःख का ,
आर्य अष्टाग सन्मार्ग दु खोपशम कारक

१९२
यही शरण सक्षेम, यही शरण श्रेष्ठ है ,
इन्हें पाकर दुःखो के सर्व बधन टूटते ।

१९३
जेतवन
आनन्द (थेर) का प्रश्न
दुर्लभ्य पुरुष श्रेष्ठ, जन्मता न सभी कहीं ,
कुल सौख्य बढ़ाता है ऐसा धीर स्वजन्म से ।

१५—सुख वर्ग

१९७

शाक्य नगर

जाति कलह के उपशमनार्थ

सुख से हम जीते हैं वैरियों में अवैर हो,
वैर हीन स वैरों में विहार करते अहो।

१९८

सुख से हम जीते हैं रोगियो में अरोग हो,
रोग हीन स-रोगों में विहार करते अहो।

१९९

सुख से हम जीते हैं रागियों में अराग हो,
राग हीन स रागों में विहार करते अहो।

२००

पञ्चशाला (ब्राह्मणग्राम, मगध) मार

सुख से हम जीते हैं जो अकिंचन ही अहो !
आभास्वर सुरों जैसा लगे आहार प्रीति का ।

२०१

जेतवन कोसलराज

जय से शत्रुता होती, हारे की नींद दुःख की ,
उपशान्त सुखी सोता उठ के हार जीत से ।

२०२

जेतवन कोई कुलक या

नहीं है द्वेष के जैसा पाप, अग्नि न राग सी ,
नहीं है दु ख स्कन्धों सा, शान्ति सा सुख है नहीं ,

२०३

आलवी एक उपासक

महारोग बुभुक्षा है, सस्कार बड़ दुःख है ,
ज्ञानी यों जान लेता है—निर्वाण सुख श्रेष्ठ है ।

२०४

जेतवन (पसेनदि कोसलराज)

लब्धि आरोग्य की श्रेष्ठा श्रेष्ठा सम्पत्ति तुष्टि की,
विश्वास परमात्मीय, निर्वाण सुख श्रेष्ठ है।

२०५

वैशाली तिस्स (थेर)

आती अभयता पीके रस एकान्त शांति का,
मालिन्य धुल जाता है धर्म की वर प्रीति से।

२०६

(वेणुग्राम) सक्क (देवराज)

प्रिय दर्शन आर्यों का, उनकी निकटस्थता,
अदर्शन निमूढ़ों का, सदा सुखद लोक में।

२०७

साथ दुर्मति का हो तो दूर पर्यन्त दुःख है,
शत्रु-सा त्रास देती है मूढ़ की निकटस्थता।
धीरों का मिलना मानो प्राप्ति है वर बंधु की।

२०८

बेलगाम राय देवराज

गहे अब मार्ग धुरन्धरों का,
बहुश्रुतों आर्य बनी बुधों का,
नक्षत्रमाला-पथ व्योम में ज्यों
स्वीकारता है अमृतांशुमाली।

१६—प्रिय वर्ग

२०९

जेतवन — तीन भिक्षु

योग से दूर है एव युक्त जो है अयोग से ,
वह चाहे प्रियग्राही आत्मयुक्त अकाम को ।

२१०

प्रिय—अप्रिय दोनों की कामना न करे कभी ,
अनिष्ट प्रिय का जाना, आना अप्रिय का तथा ।

२११

अनिष्ट प्रिय का जाना, चाहे न प्रियता अत ,
ग्रन्थिहीन सदा हैं वे प्रियाप्रिय जिन्हें नहीं ।

२१२

जेतवन कोई कुटुम्बी

प्रिय से शोक ही होता, भय भी प्रिय से तथा ,
प्रियमुक्त हुआ है जो शोक क्या, भय क्या उसे !

२१३

जेतवन विशाखा (उपासिका)

प्रेम से शोक ही होता, भय भी प्रेम से तथा ,
प्रेममुक्त हुआ है जो शोक क्या, भय क्या उसे !

२१४

वैशाली (कूटागारशाला) लिच्छवि लोग

रति से शोक ही होता, भय भी रति से तथा ,
रतिमुक्त हुआ है जो शोक क्या, भय क्या उसे !

२१५

जेतवन अनित्थिगन्धकुमार

काम से शोक ही होता, भय भी काम से तथा ,
काममुक्त हुआ है जो शोक क्या, भय क्या उसे !

२१६

जेतवन

कोइ ब्राह्मण

तृष्णा से शोक ही होता तृष्णा से भय भी तथा,
तृष्णामुक्त हुआ है जो शोक क्या, भय क्या उसे।

२१७

राजगृह (वेणुवन)

पाँच सौ बालक

युक्त है धर्मधारी जो शील, सत्य, सुदृष्टि से,
प्यारा वह सभीका है स्वकर्म करता हुआ।

२१८

जेतवन

अनागामी

काली अकथ का है जो उसीकी लौ लगी जिसे,
वह व्यक्ति अरागी जो ऊर्ध्वस्रोत कहा गया।

२१९

ऋषिपतन नन्दिपुत्त

लौटा चिर प्रवासी हो स्वस्ति सयुत दूर से ,
ज्ञाति मित्र सुहृद् लेते अभिनन्दन से उसे ,

२२०

तथैव सुकृती जाता यहाँ से परलोक में ,
प्रिय पुण्य उसे लेते लौटे स्वजन-ज्यो वहाँ ।

१७—क्रोध वर्ग

२२१

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम) रोहिणी

तजे अहन्ता, अभिमान एव
समस्त संयोजन बन्ध ठेले
न नाम में और न रूप में हो
आसक्त जो निःस्व सुखी वही है।

२२२

आलवी (अग्गालव चैत्य) कोइ भिक्षु

रथ तत्काल हो थामे जो दुर्धावन क्रोध का,
वही है सारथी सच्चा हैं रज्जुधर अन्य तो।

२२३

राजगृह (वेणुवन) उत्तरा उपासिका

क्रोध अक्रोध से जीते, साधुता से असाधुता,
लोभी को दान से जीते, सत्य द्वारा असत्य त्यों।

२२४

जेतवन महामोग्गलान (थेर)

कहे सत्य, न कोपे, दे दान याचित स्वल्प भी ,
ये त्रिस्थान देते हैं देव वृन्द समीपता ।

२२५

साकेत ब्राह्मण

अहिंसा का व्रती है जो, तनु से संयमी सदा ,
धाम अच्युत पाता सो मुनि, शोक नहीं जहाँ ।

२२६

राजगृह (गृध्रकूट) राजगृह के श्रेष्ठी का पुत्र

अनुशिक्षण युक्तों के, जाग्रतों के अहर्निशि ,
निर्वाण अधिमुक्तों के सर्व आस्रव अस्त हैं ।

२२७

जेतवन अतुल (उपासक)

सुनो अतुल, वाणी है पुरानी, आज की नहीं ,—
निन्दा है बहुभाषी की, निन्दा है मौनयुक्त की ,
निन्दा है मितभाषी की अनिंद्य जन कौन है ।

२२८

न था ऐसा, न होगा ही, विद्यमान नहीं तथा ,
मिले केवल निन्दा या प्रशंसा ही मिले जिसे ।

२२९

जेतवन अतुल (उपासक)

सर्वदा वर विज्ञों ने की प्रशंसा विवेक से
जिस अच्छिद्र मेधावी प्रज्ञाशील सुवृत्ति की ,

२३०

वह काञ्चन मुद्रा-सा अनिन्दित विशुद्ध है ,
उसके सुप्रशंसी हैं ब्रह्मा अमर वृन्द भी ।

२३१

जेतवन वज्रिय (भिक्षु)

निवारे कोप काया के, काया संयत हो सदा ,
तजे कलुष काया से शुभाचरण शील हो ।

२३२

निवारे कोप वाणी के, वाणी संयत हो सदा ,
तजे कलुष वाणी से शुभाचरण शील हो ।

२३३

निवारे कोप जी के, हो मन संयत सर्वदा ,
तजे कलुषता जी से शुभाचरण शील हो ।

२३४

काया-संयत जो ज्ञानी, वाणी-संयत जो सदा ,
मन संयत एव जो परिसंयत है वही ।

१८—मल वर्ग

२३५

जेतवन

गोघातक पुत्र

तुम हो अब पीत पत्र ज्यों,
यम के दूत समीप आ गये।
करना तुमको प्रयाण है,
कुछ भी सबल साथ है नहीं।

२३६

अविलम्बित आत्म द्वीप का
कर निर्माण सुबुद्धियुक्त हो।
मल-मुक्त विशुद्ध हो
तुमको आर्

२३७

जेतवन गोघातक पुत्र

अब अन्तिम आयु आचुकी ,
यम का धाम समक्ष दीखता ।
पथ मध्य न रच छाँह है ,
कुछ भी सबल साथ है नहीं ।

२३८

अविलम्बित आत्म द्वीप का
कर निर्माण सुबुद्धियुक्त हो ।
मल मुक्त निशुद्ध हो, तभी
भव में जन्म-जरा विमोक्ष है ।

२३९

जेतवन कोई ब्राह्मण

निवारे रज मेधावी क्रमश रच रच ही ,
चाँदी के मैल को जैसे जलाता कर्मकार है ।

१८—मल वर्ग

२३५

जेतवन

गोघातक पुत्र

तुम हो अब पीत पत्र ज्यों,
यम के दूत समीप आ गये।
करना तुमको प्रयाण है,
कुछ भी सबल साथ है नहीं।

२३६

अविलम्बित आत्म द्वीप का
कर निर्माण सुबुद्धियुक्त हो।
मल-मुक्त विशुद्ध हो, तभी—
तुमको लभ्य सुदिव्य आर्य भू।

२३७

जेतवन गोघातक पुत्र

अब अन्तिम आयु आ चुकी,
यम का धाम समक्ष दीखता।
पथ मध्य न रंच छाँह है,
कुछ भी सबल साथ है नहीं।

२३८

अविलम्बित आत्म द्वीप का
कर निर्माण सुबुद्धियुक्त हो।
मल मुक्त विशुद्ध हो, तभी
भव में जन्म-जरा विमोक्ष है।

२३९

जेतवन कोई ब्राह्मण

निवारे रज मेधावी क्रमश रच रच ही,
चाँदी के मैल को जैसे जलाता कर्मकार है।

१८—मल वर्ग

२३५

जेतवन

गोघातक पुत्र

तुम हो अब पीत पत्र ज्यों,
यम के दूत समीप आ गये।
करना तुमको प्रयाण है,
कुछ भी सबल साथ है नहीं।

२३६

अविलम्बित आत्म द्वीप का
कर निर्माण सुबुद्धियुक्त हो।
मल-मुक्त विशुद्ध हो, तभी—
तुमको लभ्य सुदिव्य आर्य भू।

२३७

जेतवन गोघातक पुत्र

अब अन्तिम आयु आचुकी,
यम का धाम समक्ष दीखता।
पथ मध्य न रंच छाँह है,
कुछ भी सबल साथ है नहीं।

२३८

अविलम्बित आत्म द्वीप का
कर निर्माण सुबुद्धि युक्त हो!
मल मुक्त विशुद्ध हो, तभी
भव में जन्म-जरा विमोक्ष है।

२३९

जेतवन कोइ ब्राह्मण

निवारे रज मेधावी क्रमश रंच रंच ही,
चाँदी के मैल को जैसे जलाता कर्मकार है।

२४०

जेतवन तिस्स (थेर)

मल जो वह लोहजात है,
उसका लोह-निधानकी वही।
फिर चंचल के स्वकर्म त्यों
जन को दुर्गति के निमित्त हैं।

२४१

जेतवन (लाल) उदायी (थेर)

मन्त्र का मल निष्पाठ, अनुत्थान निकेत का,
देह का मल आलस्य, रक्षों का प्रमाद है।

२४२

राजगृह (वेणुवन) कोई कुलपुत्र

मल है गर्व दानी का, नारी का अचरित्रता,
मल पातककारी है लोक में परलोक में।

२४३

कोई मल अविद्या से घोर दुस्तर है नहीं,
दूर से ही इसे त्यागो ल [illegible]

२४४

जेतवन (चुल्ल) सारी

जो निर्लज्ज वृथाभाषी काकशूर विघातकी ,
हीनवृत्ति दुराचारी दीखते हैं सुखी यहाँ ।

२४५

जेतवन (चुल्ल) सारी

सलज्ज मितभाषी जो बोधार्थी शुद्धि शोधक ,
शुचिवृत्ति सदाचारी, दीखते हैं दुखी यहाँ ।

२४६

जेतवन पाँच सौ उपासक

यह जो प्राणिघाती है, मृषा भाषण में पगा ,
अदत्त धन ले लेता, पर-दारानुरक्त है ,

२४७

मग्न होकर खोया-सा मैरेय मदपान में ,
जड़ खोद रहा ऐसा मनुष्य अपनी स्वय।

२४८

जान लें नर एसे जो पापचारी असयमी
बचो हो ! न तुम्हें बाँधें लोभ दुःखद और भी।

२४९

जेतवन तिस्स बालक

देते जन यथाश्रद्धा रुचि के अनुरूप ही,
जिसे दुस्सह औरों का लाभ यों खान पान का,
स्थिति प्राप्त नहीं होती उसे शान्त समाधि की।

२५०

उखाड़ा जिसने वैसा विद्वेष जड़ मूल से,
अहोरात्र अविच्छिन्न उसे शान्त समाधि है।

२५१

जेतवन पाँच उपासक

नहीं है राग सी ज्वाला, नहीं है ग्राह द्वेष-सा ,
नहीं है मोह-सा फन्दा, तृष्णा तुल्य नदी नहीं।

२५२

भद्दियनगर (जातियावन) मेण्डक (श्रेष्ठी)

दीखते पाप औरों के अपने दीखते नहीं ,
उड़ाता नर औरों के दोष ही तुष तुल्य है ,
हारे दाँव जुआँड़ी ज्यों अपने दोष ढाँकता ।

२५३

जेतवन उज्झानसञ्ञी (थेर)

पर दोषानुदर्शी के, कुनिन्दक कुबुद्धि के ,
बढ़ते पाप जाते हैं, पाप क्षय अशक्य है ।

२५४

कुशीनगर सुभद्र (परिव्राजक)

नहीं आकाश में संस्था, नहीं श्रमण बाह्य में,
रत लोक प्रपचों में, निष्प्रपच तथागत ।

२५५

नहीं आकाश में संस्था, नहीं श्रमण बाह्यमें ,
नहीं शाश्वत संस्कार, अविकम्पित बुद्ध हैं ।

१९—धर्मस्थ वर्ग

२५६

जेतवन   विनिच्छय महामत्य (निर्णायक)

अर्थ जो सहसा लेता धर्मस्थ वह है नहीं
करे निश्चय मेधावी अर्थ और अनर्थ का।

२५७

व्यवहार करता है जो धर्म का साम्य न्याय से,
धर्मस्थ कहलाता है धर्मरक्षित सो सुधी।

२५८

जेतवन   वज्जिय (भिक्षु)

भूरि भाषण से कोई बुध हो सकता नहीं,
भद्र निर्वैर निर्भीक कहाता मतिमान है।

२५९

जेतवन एकुदान (थेर)

न धर्मधर है कोई भूरि भाषण से कहीं।
अल्प ही सुन काया से करे स्वीकृत धर्म जो,
धर्म से न कहीं चूके सद्धर्मधर है वही।

२६०

जेतवन लकुटक भद्दिय (थेर)

नहीं स्थविर होता है हुआ पलित केश जो,
व्यर्थ वृद्ध उसे जानो, उसकी आयु ही पकी।

२६१

जेतवन लकुटक भद्दिय (थेर)

सत्य धर्म अहिंसा है जिसमें दम संयम,
सुनिर्मल वही ज्ञानी कहा स्थविर है गया।

२६२

जेतवन अनेक भिक्षु

सुवक्ता भर होने से, किंवा वर्ण सुरूप से,
कोई साधु नहीं होता ईर्ष्यालु शठ मत्सरी।

२६३

जिसने दोष ऐसे ये उखाड़े जड़ मूल से ,
सुनिर्मल वही ज्ञानी साधु रूप कहा गया ।

२६४

जेतवन हस्थक (भिक्षु)

अव्रती जो मृषावादी, इच्छा से, लोभ से भरा ,
वह क्या मुड़ने से ही होगा श्रमण लोक में ?

२६५

शान्त पाप करे सारे स्थूल हों या कि सूक्ष्म हों ;
सर्वश सब पापों को शमे श्रमण है वही ।

२६६

जेतवन कोई ब्राह्मण

मात्र भिक्षण से कोई भिक्षु हो सकता नहीं ,
वह भिक्षु कहाँ कैसे धर्म के प्रतिकूल जो ?

जेतवन २६७ कोइ ब्राह्मण

ब्रह्मचर्यव्रती है जो पाप के पुण्य के परे,
लोक में ज्ञानचारी त्यों कहाता वह भिक्षु है।

जेतवन २६८ तीथिक

अविद्वान नहीं होना मुनि केवल मौन से।
ज्ञानी जो श्रेष्ठ ही लेता तुला पर तुला हुआ,

२६९

त्यागता पाप सारे ही मुनि सो मुनि है तभी,
करे मनन लोकों का, कहते मुनि हैं उसे।

जेतवन - २७० अरिय बालिसिक

कोई हो, प्राणि हिंसा से आर्य हो सकता नहीं,
जो अहिंसक जीवों में, वही आर्य कहा गया।

२७१

जेतवन अनेक शील-सम्पन्न भिक्षु

न बहुश्रुत होने से, न शील व्रत मात्र से ,
न समाधि अवस्था से, न एकान्त निवास से ,

२७२

नैष्क्रम्य सुख पाया है मैं ने यह अनन्य जो ,
भिक्षुओ, न रुको जो लौं सभी आस्रव क्षीण हों ।

२०—मार्ग वर्ग

२७३

जेतवन

पाँच सौ भिक्षु

मार्गों में श्रेष्ठ अष्टांग, सत्यों में पद चार हैं,
विराग सब धर्मों में, नरों में नर नेत्रवान्।

२७४

अनन्य यह पन्था है दृष्टि की शुद्धि के लिए,
आरूढ़ इस पै होओ, मार-मोहन है यही।

२७५

जेतवन

पाँच सौ भिक्षु

दुःख का अन्त पाओगे धरोगे इसको तभी,
यह मार्ग कहा मैने शल्य संस्थान जान के।

२७६

तपना तुमको ही है, आख्याता मात्र बुद्ध हैं,
धरेंगे मार्ग जो ध्यानी छूटेंगे मार-पाश से।

२७७

जेतवन पाँच सौ भिक्षु

अनित्य सर्व संस्कार प्रज्ञा से जब जान ले,
तभी निस्तार दुःखों से—यही मार्ग विशुद्धि का।

२७८

जान ले जब प्रज्ञा से सर्व संस्कार दुःख हैं,
तभी निस्तार दुःखों से—यही मार्ग विशुद्धि का।

२७९

जान ले जब प्रज्ञा से सर्व धर्म अनात्म हैं,
तभी निस्तार दुःखों से—यही मार्ग विशुद्धि का।

२८०

जेतवन (योगी) तिस्स (थेर)

उत्थान वेला—तब भी न जागे,
युवा-बली होकर आलसी जो,
सङ्कल्प में निर्बल दीर्घसूत्री,
अलभ्य ही है पथ ज्ञान का उसे।

२८१

राजगृह (वेणुवन) (शूकर प्रेत)

स-क्षेम वाणी, मन निग्रही रहे,
कहीं अकौशल्य छुए न देह को।
सत्कर्म मार्गत्रय ये विशुद्ध हों,
दिखा गये जो ऋषि पन्थ ले वही।

२८२

जेतवन पोटिल (थेर)

योग से ज्ञान है, एवं ज्ञानक्षय अयोग से,
जान ले पथ हैं ये दो वृद्धि और विनाश के;
कर ले निज को ऐसा प्रज्ञा की भूरि वृद्धि हो।

२८३

जेतवन कोई वृद्ध भिक्षु

काटो वन, नहीं वृक्ष, वन हैं भय कारक,
काट के वन-झाड़ी भी, पाओ निर्वाण भिक्षुओ! *

२८४

नर जो अनुराग युक्त है,
वनिता के प्रति अल्प मात्र ही,
रहता वह बद्धचित्त है,
जननी में अनुबिद्ध वत्स-सा।

२८५

जेतवन सुवण्णकार (थेर)

निज नेह उखाड़ लो स्वत,,
सर से कैरव शारदीय ज्यों।
पथ लो तुम बुद्ध-बोधित
परिनिर्वाण प्रशान्ति है जहाँ।

२८६

जेतवन (महाधनी वणिक्)

यहाँ वर्षा बिताऊँगा, यहाँ हेमन्त, ग्रीष्म में,
मूढ़ों की जल्पनाएं हैं, बाधाएँ बूझते नहीं।

२८७

जेतवन किसा गोतमी (थेरी)

लिप्त जो पशु पुत्रों में ले जाती मृत्यु यों उसे,
बहाके बाढ़ ले जाती ज्यों निद्रा मग्न ग्राम को।

२८८

जेतवन पटाचारा (थेरी)

बचा पाता नहीं कोई पिता-पुत्र, न बन्धु ही,
त्राणकारी नहीं कोई मृत्यु के मुख ग्रास का।

२८९

शील संवृत मेधावी यथार्थ यह जान के,
शीघ्र ही शोध लेते हैं मार्ग निर्वाण दायक।

२१—प्रकीर्ण वर्ग

२९०

राजगृह (वेणुवन) गंगावरोहण

छोड़ के सुख थोड़ा-सा मिलता सुख हो बड़ा ,
तो बड़ा सुख पाने को थोड़ा सुख तजें सुधी ।

२९१

जेतवन कोढ़ पुरुष

दु:ख देकर औरों को चाहता सुख जो स्वय ,
वह मुक्त नहीं होता वैर-संसृष्ट वैर से ।

१९२

भद्दियनगर (जातियावन) भद्दिय (भिक्षु)

कृत्य तो तजता एव रत होता अकृत्य में ,
प्रमत्त उस पापी की होती आस्रव वृद्धि है ।

२९

स्मृति में गति काया की जिसकी रहती सदा,
कृत्य ही करता है सो छोड़ देता अकृत्य है।
वैसे जागृत ज्ञानी के होते आस्रव क्षीण हैं।

२९४

जेतवन लकुंटक भद्दिय (थेर)

इनें तृष्णा, अहंकार, नित्य उच्छेद दृष्टियाँ,
एवं श्रोत्रादि,—होता है यों निष्पाप ब्राह्मण।*

२९५

इनें तृष्णा, अहंकार, नित्य-उच्छेद दृष्टियाँ,
एवं कामादि,—होता है यों निष्पाप ब्राह्मण।

२९६

राजगृह (वेणुवन) (दारुसाकटिकपुत्र)

सुप्रबुद्ध सुखी हैं वे सदा गौतम श्रावक,
जिनकी है अहोरात्र नित्य बुद्धगता स्मृति।

२९७

सुप्रबुद्ध सुखी हैं वे सदा गौतम श्रावक,
जिनकी है अहोरात्र नित्य धर्मगता स्मृति ।

२९८

सुप्रबुद्ध सुखी हैं वे सदा गौतम श्रावक,
जिनकी है अहोरात्र नित्य संघगता स्मृति ।

२९९

सुप्रबुद्ध सुखी हैं वे सदा गौतम श्रावक,
जिनकी है अहोरात्र नित्य कायगता स्मृति ।

३००

सुप्रबुद्ध सुखी हैं वे सदा गौतम श्रावक,
जिनका निरवच्छिन्न अहिंसारत चित्त है ।

३०१

सुप्रबुद्ध सुखी हैं वे सदा गौतम श्रावक,
जिनका निरवच्छिन्न भावनारत चित्त है ।

३०२

वैशाली (महावन) वज्जिपुत्तक (भिक्षु)

दुष्प्रव्रज्या नहीं रम्या, न रम्य कु-निवास ही,
रहना असमों में स्यों, मार्ग के दुःख भी कड़े;
अत न पथ म भूले, दुःख में न भ्रमे तथा।

३०३

जेतवन चित्त (गृहपति)

यशोधन गुणी ज्ञानी श्रद्धावन्त सुशील को,
पूजते सब हैं, जावे चाहे जिस प्रदेश में।

३०४

जेतवन (चुल्ल) सुभद्दा

दीख सज्जन जाते हैं दूर से हिमवन्त ज्यों,
निशि क्षिप्त शरों-सैसे नहीं दुर्जन दीखते।

३०५

जेतवन अकेले विहरने वाले (थेर)

अतन्द्र पयचारी हो एक आसन-शय्य हो,
सुजितेन्द्रिय हो, जाके अकेला वन में रमे।

२२—नरक वर्ग

३०६

जेतवन सुन्दरी (परिव्राजिका)

पाता अधोलोक अभूतवादी ,
मो भी,—करे किन्तु उसे न माने ।
निकृष्ट दोनों मरणोपरान्त
समान ही दुर्गति भोगते हैं ।

३०७

राजगृह (वेणुवन) (पाप फलानुभवी प्राणी)

बहुकाषाय धारी हैं पापधर्मा अनिग्रही ,
जन्मते नरकों में हैं पापिष्ठ अधकर्म से ।

३०८

वेशाली (वग्गुमुदातीरवासी भिक्षु)

लेना आहार भिक्षा का असंयत, अशील जो ,
लीलना उससे अच्छा जलता पिण्ड लौह का ।

३०९

जेतवन खेम (श्रेष्ठीपुत्र)

प्रमत्त जो है परदार-कामी ,
अपुण्य को छोड़ मिला उसे क्या ।
निश्चिन्त निद्रा मिलती नहीं है ,
निन्दा तथा दुर्गति भोगता है ।

३१०

अपुण्य है, दुर्गति पापपूरिता ,
स्थिरा कहाँ है रति भीत युग्म में ।
हैं राज्य के दण्ड कठोर भारी
भली नहीं है परदार लिप्सा ।

३११

जेतवन कटुभाषी (भिक्षु)

दुर्गृहीत कुश। हो तो छिलता निज हाथ ही ,
देती नरक है त्यों ही भिक्षुता पाप-पालिता ।

३१२

कर्म जो रच भी ढीला, व्रत जो कष्ट से लिया,
कष्ट की ब्रह्मचर्या जो—देते सुफल ये नहीं।

३१३

करना तुमको है तो स पराक्रम ही करो,
ढीली ढीली परिव्रज्या उड़ाती रज मात्र है।

३१४

जेतवन (कोई ईर्ष्यालु स्त्री)
ताप दुष्कृत देते हैं, अकर्म उनका भला,
करे सुकृत ही, कोई अनुताप नहीं जहाँ।

३१५

जेतवन बहुत से भिक्षु
सीमान्त नगरी के ज्यों अन्तर्बाह्य सुरक्ष्य हैं,
करे त्यों अपनी रक्षा, न एक क्षण नष्ट हो,
रोना नरक में जाके चूका जो क्षणमात्र ही।

३१६

जेतवन (जैन साधु)

लज्जा में न जिसे लज्जा अलज्जा में सलज्ज जो,
ऐसा मूढ़ मृषाधारी पाता है गति नारकी।

३१७

न देखे भीति में भीति, देखे भीति अभीति में,
ऐसा मूढ़ मृषाधारी पाता है गति नारकी।

३१८

जेतवन (तीर्थिक शिष्य)

अनिन्दा निन्द्य में देखे, निन्दा देखे अनिन्द्य में,
ऐसा मूढ़ मृषाधारी पाता है गति नारकी।

३१९

निन्द्य को नि द्य ही देखे, त्यों अनिन्द्य अनिन्द्य को,
पाता सुगति ऐसा जो सम्यक् दृष्टा सुविज्ञ है।

२३—नाग वर्ग

३२०

जेतवन •　　　　　　　　　　　　　　आनन्द (थेर)

रण में झेल लेता है सन्वाने शर नाग ज्यों ,
दुर्वाक्य सह लूँगा मैं दुःशीलबहुला धरा ।

३२१

सधा हाथी चला जाता रण में नृप को लिये ,
कुवाच्य सह ले जो यों वही मनुज श्रेष्ठ है ।

३२२

सधा खच्चर अच्छा त्यों सधा तुरग सिन्धु का ,
सधा कुंजर भी अच्छा, सबसे श्रेष्ठ आत्मजित् ।

३२३

जेतवन (भूतपूर्व महावत भिक्षु)

यान जाने नहीं पाते अगता दिशि में जहाँ,
चला सयत जाता है आत्म सयम शील से।

३२४

जेतवन (परिजिण्ण ब्राह्मणपुत्त)

धनपालक नाम कुजर
मद में दुर्धर दुर्निवार जो,
बँध के रहता अभुक्त है,
अपने कानन हेतु हींड़ता।

३२५

जेतवन पसेनदी (कोसलराज)

पड़े पड़े भोजन और निद्रा
विमूढ़ जो सालस ले रहे हैं,
पाले गये पुष्ट वराह से वे
पुनः पुन सभव क्लेश पाते।

३२६

जेतवन (सामथेर)

यथेच्छ मेरा मन पूर्व काल में
सुला फिरा है सुख से सभी कहीं,
इसे करूँगा वश अंकुशाग्र से,
यथा निषादी मदमत्त नाग को।

३२७

जेतवन पावेय्यक नामक हाथी

आलस्य तज दो, चेतो, रक्षा करो स्वचित्त की,
गज ज्यों पंक में डूबे उद्धार अपना करो।

३२८

पारिलेय्यक बहुत से भिक्षु

ज्ञानी तथा सत्स्मृतिमन्त का जो
सहाय एव सहचार पाओ,
तो ठेल के सर्व परिश्रयों को
सन्तुष्ट होके विहरो सहर्ष।

३२९

पाओ नहीं सज्जन प्राज्ञ का जो
सहाय एव सहचार लाभ ,
नृपाल ज्यों तो जित राज्य त्यागी
करो अकेले गज सा विहार ।

३३०

श्रेय जीवन एकाकी, अज्ञ का सग ले नहीं ,
एकान्त विचरे तो भी पाप से हट के रहे ,
वन में विहरे होके रागरिक्त गजेन्द्र-सा ।

३३१

हिमवन्त प्रदेश मार

सगी भले हैं दुख आ पड़े के ,
सन्तोष अन्योन्य निबद्ध अच्छा ।
देहान्त कालीन सुकृत्य अच्छा ,
सारे दुखों का क्षय और अच्छा ।

३३२

माता की सुखदा सेवा, पिता की सुखदा तथा ,
श्रामण्य सुखकारी है, एवं ब्राह्मण्य सर्वदा ।

३३३

भला शील, भली श्रद्धा—जरा पर्यन्त जो रहे ,
भला है लाभ प्रज्ञा का, भला है त्याग पाप का ।

२४—तृष्णा वर्ग

३३४

जेतवन कपिलमच्छ

बढ़ती मदमत्त की तृषा ,
बढ़ती है जिस भाँति मालुवा ,
इससे उस डाल फाँदता
फिरता है वह लुब्ध कीश सा ।

३३५

जिसे घेर गई तृष्णा—बढ़ेरू विष-वल्लिका ,—
बढ़ते उसके जाते दुःख वीरण तुल्य हैं।

३३६

जीत ली जिसने तृष्णा,—बढ़ेरू विष-वल्लिका ,—
झड़ते उसके दुःख,—जल ज्यों पद्म पत्र से ।

३३७

तो सुनो भद्र, आये जो—क्षेम हो—तुम खोद दो,
ज्यों वीरण उशीरार्थी,—तृष्णा यह स-मूल ही।
तुम्हें मार न आघाते नल को जल-ओघ-सा।

३३८

बेतवन गृथ सूकर-पोतिक

हुआ न उच्छिन्न स-मूल वृक्ष जो,
नये-नये अंकुर फूटते पुनः,
त्यों ही न उच्छिन्न स-मूल जो तृषा,
नये-नये अंकुर फूटते पुन,

३३९

स्रोत छत्तीस छूटे हैं जिसके सुख-भोग में,
राग संकल्प ले जाते बहाके दु ख में उसे।

३४०

स्रोत तृष्णाकुरों को ये सींचते बह सर्वत,
उगा देखे इन्हें त्यों ही प्रज्ञापूर्वक खोंट दे।

३४१

सुख में परिलिप्त लुब्ध को
सरिताएँ रुचती सदैव ये ;
उसके—उस स्रोत-बद्ध के ,—
भव के बन्धन टूटते नहीं ।

३४२

शश-तुल्य निबद्ध जाल में
जन तृष्णातुर घूर्णमान है ,
भ्रमता वह है पुन पुन
चिर सयोजन में फँसा हुआ ।

३४३

शश-तुल्य निबद्ध जाल में
जन तृष्णातुर घूर्णमान है ,
अतएव तृषा निवार के
मनसा भिक्षु विराग युक्त हो।

३४४

जेतवन विभ्रंतक भिक्षु

वन-मुक्त निमुक्ति-काम जो
वन की ओर पुनश्च दौड़ता ,
वह है उस मुक्त व्यक्ति-सा
फिर से बन्धन ओर जो बढ़े ।

३४५

जेतवन बन्धनागार

हो लौह का दारु कि रज्जु का ही ,
उसे नहीं दारुण बन्ध जाने ,
जो पुत्र दारा मणि कुण्डलों का ,
कहा बुधों ने दृढ़ बन्ध सो ही ।

३४६

दुर्मोच्य भी जो श्लथ-रम्य दीखे ,
कहा बुधों ने दृढ़ बन्ध सो ही ।
तोड़े उसे होकर रागरिक्त ,
परिव्रजे धीर उदार चेता ।

३४७

राजगृह (वेणुवन) खेमा (बिम्बसार महिषी)

हैं स्रोत में जो नर राग रागी
पड़े स्वय निर्मित जाल में हैं।
जो धीर, वे बन्धन तोड़ सारे,
असक्त निर्बाधित डोलते है।

३४८

राजगृह (वेणुवन) उग्गसेन (श्रेष्ठी)

अगला-पिछला कि मध्य का,
तज सम्पूर्ण भवाब्धि को तरो।
जिसका मन मुक्त सर्वशः
फिर से जन्म-जरा नहीं उसे।

३४९

जेतवन (चुल्ल) धनुग्गह पण्डित

बहु मथित भ्रान्ति तर्क से
चिर रागी प्रिय का सदैव जो,
उसकी बढ़ती हुई तृषा,
करती बन्धन और भी कड़े।

३५०

भ्रम संशय शान्ति में लगा ,
अशुभों से मन में सचेत जो ,
जग में वह व्यक्ति निश्चयी
करता बन्धन छिन्न मार के ।

३५१

जेतवन मार

निष्ठा निष्ठ असन्त्रासी वीततृष्ण अपाप जो ,
उसकी अन्तिमा काया भव शल्य उखाड़ती ।

३५२

वीततृष्ण, अनादानी, निरुक्ति-पद-कोविद ,
अक्षरों के समूहों का पूर्वापर सुविज्ञ जो ,
कहते हैं महाप्राज्ञ उसी अन्तिमकाय को ।

३५६

पाडुकम्बलशिला (देवलोक) *अङ्कुर*

तृण है दोष खेतो का, प्रजा का दोष राग है ,
वही सुफलकारी है, दिया जो वीतराग को ।

३५७

तृण है दोष खेतों का प्रजा का दोषद्वेष है ,
वही सुफलकारा है, दिया जो वीतद्वेष को ।

३५८

तृण है दोष खेतों का, प्रजा का दोष मोह है ,
वही सुफलकारी है, दिया जो वीतमोह को ।

३५९

तृण है दोष खेतों का, प्रजा का दोष काम है ।
वही सुफलकारी है, दिया जो वीतकाम को ।

३५३

वाराणसी से गया के रास्ते में   उपक (आजीवक)

सर्वज्ञ हूँ मैं, सबका विजेता
  छूता मुझे रंच न धर्म कोई,
अतृष्ण हूँ मुक्त अशेष दाही,
  अभिज्ञ लूँ मैं किससे सुदीक्षा?

३५४

जेतवन   सक्क देवराज

जो धर्म का दान बड़ा वही है,
  बड़ा वही जो रस धर्म का हो,
बड़ी वही जो रति धर्म की है,
  बड़ी सभी से जय है तृषा की।

३५५

जेतवन   (अपुत्रक श्रेष्ठी)

नष्ट है वह भोगों से पार जाना नहीं जिसे,
तृष्णा समूढ औरों-सा हनता निज को स्वयं।

३५६

पाडुकम्बलशिला (देवलोक) अकुर

तृण है दोष खेतो का, प्रजा का दोष राग है ,
वही सुफलकारी है, दिया जो वीतराग को ।

३५७

तृण है दोष खेतों का प्रजा का दोषद्वेष है ,
वही सुफलकारा है, दिया जो वीतद्वेष को ।

३५८

तृण है दोष खेतों का, प्रजा का दोष मोह है ,
वही सुफलकारी है, दिया जो वीतमोह को ।

३५९

तृण है दोष खेतों का, प्रजा का दोष काम है ।
वही सुफलकारी है, दिया जो वीतकाम को ।

२५—भिक्षु वर्ग

३६०

जेतवन पाँच भिक्षु

श्रेष्ठ सयम नेत्रों का, श्रेष्ठ सयम श्रोत्र का ,
श्रेष्ठ सयम नासा का, जिह्वा सयम श्रेष्ठ है ।

३६१

श्रेष्ठ सयम काया का, श्रेष्ट सयम वाक्य का ,
मन सयम है श्रेष्ठ, सर्व सयम श्रेष्ट है ।
दु ख छूट चुके सारे सर्व-सयत भिक्षु के ।

३६२

जेतवन हसघातक (भिक्षु)

यत जो पद-हस्त-वाक्य से ,
स्थिर अध्यात्म-समाधि युक्त जो ,
चिरतुष्ट प्रसन्न एकत ,
कहते सन्मति भिक्षु हैं उसे ।

३६३

जेतवन — कोकालिय

भिक्षु के, मन्त्रभाणी के, मुख संयत नम्र के ,
अर्थ धर्म विभासी के—मीठे वचन सर्वदा।

३६४

जेतवन — धम्माराम (थेर)

धर्मप्रीत धर्मिष्ठ धर्म-चिन्तन शील जो
धर्म-सुस्मृत जो भिक्षु स्थिर सद्धर्म में वही।

३६५

राजगृह (वेणुवन) — विपक्षसेवक (भिक्षु)

निज लाभ बड़ा माने, हो ईर्ष्यालु न अन्य में ,
जो पर लाभ का लोभी पाता नहीं समाधि है।

३६६

निज लाभ बड़ा माने, भले ही वह अल्प हो ,
शुद्धिजीवी [redacted] चेता ही सुर शंसित भिक्षु है।

३६७

जेतवन (पाँच अग्रदायक भिक्षु)

नाम में, रूप मे किंचित् रक्खे नहीं ममत्व जो ,
न होने से नहीं दुःखी कहाता वह भिक्षु है।

३६८

जेतवन बहुत से भिक्षु

भिक्षु मैत्री विहारी जो, बुद्ध शासन तुष्ट जो ,
हो जो शमित-संस्कार, उसका पद शान्त है।

३६९

उलीचो भिक्षुओ, नौका, हलकी कर लो इसे ,
राग-द्वेष तजो सारे निर्वाण तुमको तभी।

३७०

छेदे पाँच, तजे पाँचों, भावना पाँच की करे ,
पाँच बन्धन लाँघे सो ओघ उत्तीर्ण भिक्षु है। *

३७१

भिक्षो, शीघ्र सचेत ध्यान धारो ,
भोगों में न भ्रमे न चित्त भूले ,
लोहे का निगलो न तप्त गोला ,
यों रोना न पड़े—अरे जला मैं !

३७२

नहीं निर्ध्यान को प्रज्ञा, ध्यान अप्राज्ञ को नहीं ,
ध्यान हो और प्रज्ञा हो तो निर्वाण समीप है !

३७३

शून्य आलय में पैठे शान्त सयत भिक्षु को
सदा परम आनन्द सम्यक् सद्धर्म दृष्टि से ।

३७४

ज्यों ज्यों चिन्तन होता है स्कन्धों के उदयास्त का ,
त्यों-त्यों अमृत पाता है ज्ञाता प्रीति-प्रमोद का ।

३७५

यहाँ है यह प्रारम्भ प्रज्ञा सम्पन्न भिक्षु का
इन्द्रिय ग्रह, सन्तुष्टि, प्रातिमोक्ष-नियन्त्रणा।
सेवे सन्मित्र कल्याणी शुद्धजीवी अतन्द्र जो।

३७६

सेवा सत्कारकारी जो आचार कुशली तथा,
करेगा अन्त दुःखों का वह आमोद पूर्वक।

३७७

जेतवन पाँच सौ भिक्षु

यूथिका झाड़ देती है फूल वे सब म्लान जो;
भिक्षुओ, छोड़ दो त्यों ही राग को और द्वेष को।

३७८

जेतवन (शान्तकाय थेर)

शान्त देह गिरा शान्ता शान्ति पूर्ण समाधि हो,
शान्त भिक्षु वही है जो लोक-आमिष छोक दे।

३७९

जेतवन स्गूल (थेर)

आपको आप ही प्रेरे युक्त हो आप आप से ,
विहरे स्मृति सम्पन्न आत्म रक्षित भिक्षु यों ।

३८०

आप ही आप का स्वामी, आप ही गति आपकी ,
आपको आप ही साधे ज्यों भले अश्व को वणिक् ।

३८१

राजगृह (वेणुवन) वक्कलि (थेर)

बुद्धशासन सन्तोषी प्रसन्नमन भिक्षु को
संस्कारोपशमा रम्या मिलती सुख शान्ति है ।

३८२

श्रावस्ती (पूर्वाराम) सुमन (सामणेर)

भले ही भिक्षु हो छोटा बुद्ध-शासन-निष्ठ जो ,
चन्द्र ज्यों मेघ से छूटा वह लोक उजालता ।

२६—ब्राह्मण वर्ग

३८३

जेतवन एक बहुत श्रद्धालु ब्राह्मण

शौर्य से रोक स्रोतों को हे ब्राह्मण, अकाम हो ,
होगा अकृत ज्ञानी तू संस्कारक्षय जान के ।

३८४

जेतवन (बहुत से भिक्षु)

सिद्ध ब्राह्मण को होते जहाँ उभय धर्म हैं ,
बन्ध संयोग के सारे ज्ञानी के खुलते वहीं ।

३८५

जेतवन मार

जिसे पार नहीं एवं पारापर अपार भी ,
विमुक्त भय छोड़े जो – मानूँ ब्राह्मण मैं उसे ।

३८६

जेतवन कोई ब्राह्मण

जो क्षीणास्रव, ध्यानी त्यों कृतकृत्य अपक है,
वरार्थ जिसने जाने—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

३८७

श्रावस्ती (पूर्वाराम) आनन्द (थेर)

दिन में दीप्त आदित्य, रात्रि में दीप्त चन्द्रमा,
दीप्त क्षत्रिय सन्नद्ध, दीप्त ध्यानस्थ ब्राह्मण,
सर्वत्र ही अहोरात्र तेजोदीपित बुद्ध हैं।

३८८

जेतवन (कोई प्रव्रजित)

वह ब्राह्मण पापमुक्त जो,
समचर्या व्रतनिष्ठ साधु है,
मल कल्मष जो बहा चुका
सुपरिव्राजक ख्यात है वही।

३८९

जेतवन सारिपुत्त (थेर)

नहीं ब्राह्मण को मारे, रुष्ट आहत भी न हो ,
धिक् है ब्राह्मण-हन्ता को क्रुद्ध धिक्कृत और भी ।

३९०

की प्रेय से हो मन की निवृत्ति ,
तो श्रेय है ब्राह्मण को थोड़ा ।
ज्यों ज्यों अहिंसोन्मुख वृत्ति होती
प्रशान्त होते सब दु ख त्यों त्यों ।

३९१

जेतवन महापजापती गोतमी

शरीर मन-वाणी से नहीं दुष्कृत जो कहीं ,
संयमी सब द्वारों में—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे ।

३९२

जेतवन सारिपुत्त (थेर)

ज्ञान हो जिसके द्वारा सम्यक् सबुद्ध धर्म का ,
उसे नमन से माने—विप्र ज्यों अग्निहोत्र को ।

३९३

जेतवन जटिल ब्राह्मण

नहीं ब्राह्मण है कोई जटा से जाति गोत्र से ,
सत्य को धर्म को धारे शुचि ब्राह्मण है वही ।

३९४

वैशाली (कूटागार शाला) (पाखंडी ब्राह्मण)

दुर्बुद्धे क्या जटाओं से और क्या मृगचर्म से ,
अभ्यन्तर किये काला धो रहा निज बाह्य तू ।

३९५

राजगृह (गृध्रकूट) किसा गोमती

जीर्ण वस्त्र, कृशा काया, निकली जिसकी नसें ,
एकाकी वन में ध्यानी—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे ।

३९६

जेतवन (एक ब्राह्मण)

ब्राह्मणी ने जिसे जाया नहीं ब्राह्मण मानता ,
समृद्ध यदि हो जाये सत्कारें कह 'भो' जिसे ।
अकिञ्चन, अनादान—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे ।

३९७

राजगृह (वेणुवन) उग्गसेन (श्रेष्ठीपुत्र)

सयोजन सभी तोड़े, परित्रस्त कहीं न जो,
सग आसक्ति से छूटा—मानूँ ब्राह्मण मै उसे।

३९८

जेतवन (दो ब्राह्मण)

मुँसीका पगहा रस्सी और जो नद्धि तोड़ के,
जुआँ फेंक हुआ बुद्ध—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

३९९

राजगृह (वेणुवन) (अक्रोश) भारद्वाज

निष्क्रोध वध-बन्धों में अदूषित सहिष्णु जो,
क्षमा सुबल सेनानी—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४००

राजगृह (वेणुवन) सारिपुत्त (थेर)

दान्त सव्रत अक्रोधी बहुश्रुत सुशील जो,
जिसकी अंतिमा काया—मानूँ ब्राह्मण मै उसे।

४०१

राजगृह (वेणुवन) उप्पलवण्णा (थेरी)

आरे पै सरसों एव जल ज्यों पद्म पत्र पै
निर्लिप्त सब कामों में—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४०२

जेतवन (कोई ब्राह्मणी)

जाना है निज दुःखों के क्षय को जिसने यहीं,
मुक्त निष्पाश भारों से—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४०३

राजगृह (गृध्रकूट) खेमा (भिक्षुणी)

प्राज्ञ गम्भीर मेधावी ज्ञाता पथ-कुपथ का,
श्रेयार्थ जिसने पाये—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४०४

जेतवन (पब्भारवासी) तिस्स (थेर)

असंसृष्ट अगेही से, असंसृष्ट स गेह से,
अगेहचर अल्पेच्छु—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४०५

जेतवन (कोई भिक्षु)

न तो घात कराता जो न घात करता स्वय,
निर्दण्ड सब भूतों में—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४०६

जेतवन चार सामणेर

अविरुद्ध विरुद्धों में, उद्दण्डों में अदण्ड जो,
सादानों में अनादान—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४०७

राजगृह (वेणुवन) महापन्थक (थेर)

जिसके राग विद्वेष ईर्ष्या मान झड़े सभी
आरी से सरसों जैसे—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४०८

राजगृह (वेणुवन) पिलिन्द वच्छ (थेर)

जिसकी सत्यसम्पन्ना सार्थी गिरा अकर्कशा
नहीं आघातिनी किञ्चित्—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४०९

जेतवन — कोई स्थविर

छोटी-बड़ी खरी-खोटी कोई वस्तु बिना दिये
लेता नहीं किसीकी जो—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४१०

जेतवन — सारिपुत्त (थेर)

जिसे काक्षा नहीं कोई लोक में परलोक में,
जो निराशय नि सग— मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४११

जेतवन — महामोग्गलान (थेर)

तृष्णा शेष नहीं कोई, जिसे अकथ ज्ञान है,
अमृतोदधि का भोक्ता—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४१२

श्रावस्ती (पूर्वाराम) — रेवत (थेर)

पुण्य पातक दोनों के उठ ऊपर जो चुका,
शुद्ध निष्पक नि शोक— मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४१३

जेतवन चन्दाभ (थेर)

जिसे न भव तृष्णाएँ, सुनिर्मल प्रसन्न जो
निर्दोष चन्द्रमा जैसा—मानू ब्राह्मण मैं उसे।

४१४

कुण्डिया (कालिय) सीवलि (थेर)

समाप्त जिसके सारे मोह दुष्पय लोक में,
तृष्णा के पार ध्यानी जो अकम्पित, प्रश्नशायी,
निवृत्त अपरिग्राही—मानू ब्राह्मण मै उसे।

४१५

जेतवन सुन्दर समुद्र (थेर)

काम छोड़ चुका है जो अनागार परिव्रजे,
भव काम परिक्षीण—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४१६

राजगृह (वेणुवन) जटिल (थेर)

तृष्णा छोड़ चुका है जो अनागार परिव्रजे,
तृष्णा भव-परिक्षीण—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे।

४१७

राजगृह (वेणुवन) भूतपूर्व नट (थेर)

मानुषी योग त्यागे है, परे जो दिव्य योग के ,
सर्व बन्ध परित्यागी—मानूँ ब्राह्मण मै उसे ।

४१८

रागाराग तजे सारे, निरुपाधिक शील है ,
सर्व लोक विजेता जो—मानूँ ब्राह्मण मै उसे ।

४१९

राजगृह (वेणुवन) वगीस (थेर)

उत्पत्ति-लय जीवों का जाने पूर्ण, असग जो ,
तथा सुगत सबुद्ध—मानूँ ब्राह्मण मै उसे ।

४२०

नर गन्धर्व देवो से अज्ञेय गति सर्वदा ,
जो क्षीणास्रव है अर्हत्—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे ।

४२१

जेतवन (वेणुवन) धम्मदिन्ना (थेरी)

आगे न जिसके पीछे किञ्चिन्मात्र न अन्त में ,
अकिञ्चिन अनादान—मानूँ ब्राह्मण मै उसे ।

४२२

जेतवन अंगुलिमाल (थेर)

ऋषभश्रेष्ठ जो वीर निर्जितारि महर्षि है ,
स्थिर स्नातक सबुद्ध—मानूँ ब्राह्मण मै उसे ।

४२३

जेतवन देवहित (ब्राह्मण)

स्वर्ग अस्वर्ग का द्रष्टा, ज्ञाता पूर्व निवास का ,
मुनि पूर्ण अभिज्ञानी, जिसका भव क्षीण है ,
जो सर्व कार्य निष्पन्न—मानूँ ब्राह्मण मैं उसे ।

(इति)

परिशिष्ट

शब्दार्थ और सूचनाएँ

१	(गाथा)—मन पूर्वंग हैं धर्म	= धर्म समूहों में मन पहले पहुँचता है।
	मन श्रेष्ठ	= (धर्मसमूहों से) मन ही श्रेष्ठ है।
२	अनपायिनी	= अचल, निरन्तर साथ रहने वाली
७	कुसीदी	= आलसी, अश्रद्ध
९	दम	= इन्द्रियों का दमन
	निष्कषाय	= मल रहित, निष्पाप
	काषाय	= गैरिक वसन
१०	दान्त	= जितेन्द्रिय
	समाहित	= एकाग्र, समाधि युक्त
१२	सम्यक्	= यथोचित
१३	अभावित	= भावना रहित
२०	उपादान	= सामग्री, ग्रहण, स्वीकार
२१	प्रमाद	= आलस्य, त्रुटि
३५	मार	= राग आदिक शत्रु, विषय
४५	शैक्ष	= निर्वाण पथ पर आरूढ पुरुष जिसका वहाँ से पतन नहीं हो सकता।

४८	कृतान्त	= यम
५९	सम्यक् सबुद्ध-श्रावक	= बुद्ध-शिष्य
६४	दर्वी	= काठ का करछुल
७६	निधिप्रवक्ता	= गुप्त धन बता देने वाला
	वर्ज्य-ज्ञापक	= वर्जनीय दोष बता देने व
८६	उपदिष्ट	= उपदेश पाया हुआ
८९	सम्बोधि	= परम ज्ञान, मोक्ष ज्ञान
	क्षीणास्रव	= जिसके मल क्षीण हो गये
९५	इन्द्रकील	= नगर के द्वार पर प्रतिष्ठित
९७		= मूल गाथा में कहा गया है श्रेष्ठ पुरुष वही है जो—अ (अश्रद्ध), अकतञ्ञू (अकृ सन्धिच्छेदो (सन्धिच्छेदक, मारने वाला) हतावक (हतावकाश, अवकाश रहि और वन्तासो (आशारहित) इसमें विरोधाभास है। इन का अर्थ इस प्रकार किया गया
	अश्रद्ध	= मिथ्या श्रद्धा से शून्य
	अकृतज्ञ	= अकृत अर्थात् निर्वाण का
	संधिच्छेदक	= संसार-संधि अर्थात् पुनर्जन्म का उच्छेद करने वाला

हतावकाश = अवकाश अर्थात् पुण्यापुण्य से रहित

वन्ताश = आशा अर्थात् तृष्णा का वमन कर देने वाला

१०८ ऋजु = सरल

१११ प्राज्ञ = विद्वान्, ज्ञानी

१२३ अल्प सार्थ = जिसके साथी थोड़े हों

१२६ अनास्रव = पाप रहित, विषय वासना रहित

१५१ निर्जर = जरा रहित

१५३ गृहकारी = शरीर रूपी गृह का निर्माता

१५४ विसंस्कारी = निर्वाणप्राप्त

१५५ निमान = मत्स्य शून्य

१५७ नियामा = रात, जिसमें तीन प्रहर हों

१६० दान्ति = जितेन्द्रियता

१६१ वज्र = हीरक

अश्म रत्न = प्रस्तर मणि

१६२ मालुवा = लता विशेष, जिस वृक्ष पर यह चढ़ती है, उसीको नष्ट करती है।

१७३ कुशल = पुण्य, सत्कर्म

१७७ कदर्य = कृपण

१७८ स्रोतापत्ति = बौद्धधर्म की साधना के चार

		मार्गों में से एक मार्ग। स्रोतापत्ति अर्थात् मार्ग रूप स्रोत की प्राप्ति,—स्रोत में आगमन। जो निर्वाणेच्छु पुरुष इस धारा में आ पडता है वह उससे भ्रष्ट नहीं होता।
१८३	उपसम्पदा	= प्राप्ति, सचय
१८५	प्रातिमोक्ष	= भिक्षु के लिए निर्दिष्ट आचार नियम
१८७	श्रावक	= अनुयायी, (गृहस्थ)
१९०	आर्य सत्य	= चार उत्तम सत्य, यथा—दु ख, दु ख की उत्पत्ति (कारण), दु ख का अतिक्रमण और दु ख से मुक्त होने का उपाय-अष्टांग मार्ग।
१९१	अष्टांग मार्ग	= सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सकल्प, सम्यक् वाक्य, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव (जीविका), सम्यक् व्यायाम (चेष्टा), सम्यक् स्मृति और सम्यक् सम्बोधि (समाधि, ध्यान)—इन आठ अगों वाला—अष्टांगिक मार्ग।

		शत्रुचर राष्ट्र और व्याघ्र के लिए टीकाकारों की व्याख्या के अनुसार ये शब्द यथाक्रम रक्खे गये हैं—तृष्णा, अहंकार, नित्य (=शाश्वत) तथा उच्छेद ये दो दृष्टियाँ, ओमादिक और कामादिक।
३०६	अभूतवादी	= असत्यवादी
३२०	नाग	= हाथी
३२३	अगता दिशा	= अगम्य दिशा, अर्थात् निर्वाण
३२४	धनपालक	= हस्ति विशेष। काशिराज के मङ्गल हस्ती की मृत्यु होने पर वन से धनपालक नाम का एक हाथी पकड़ कर लाया गया। उस हाथी ने अपनी माता के विच्छेद दुःख से दुःखी होकर—चिंघाड़कर—आहार छोड़ दिया था। गाथा में इसी जातक कथा का संकेत है।
३२८	परिश्रय	= विघ्न
३३५	वीरण	= चटाई बनाने का एक तृण
३३९	छत्तीस स्रोत	= छत्तीस प्रकार की तृष्णाएँ बौद्ध-

		ग्रन्थों में कही गई हैं। यहाँ उन्हीं की ओर संकेत है।
३४१	सरिताएँ	= तृष्णाएँ
३४२	संयोजन	= बन्धन
३५४	रति	= अनुरक्ति, प्रीति
३६३	मन्त्रभाणी	= मनन पूर्वक कथन शील
३७०		— इस गाथा का अर्थ इस प्रकार किया गया है—मिथ्या कल्पना, संशय, मिथ्या मत, विषय भोग की इच्छा और हिंसा इन पाँच बातों का उच्छेद करे, रूपराग, अरूप राग, अहंकार, अस्थिरता और अविद्या इन पाँच का परित्याग करे, तथा श्रद्धा, उत्साह, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा इन पाँच की भावना करे। इस प्रकार जो लोभ, द्वेष, मोह, अभिमान और मिथ्या कल्पना का अतिक्रमण कर जाता है, उसे ओघ से उत्तीर्ण कहते हैं।
३७८	ओकना	= वमन करना
३८३	अकृत	= निर्वाण

३८४	उभय धर्म	= चित्त संयम और भावना
३८५	पार	= चक्षु आदिक आध्यात्मिक आयतन
	अपार	= रूप आदिक बाह्य आयतन
	पारापर	= अहंकार, मैं और मेरा।